R.N.I. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2018-20

मूल्य-4 रुपये, वर्ष-19, अङ्क-6 जून 2019 1

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ०प्र०) का
मासिक मुख-समाचार पत्र

मङ्गलायतन

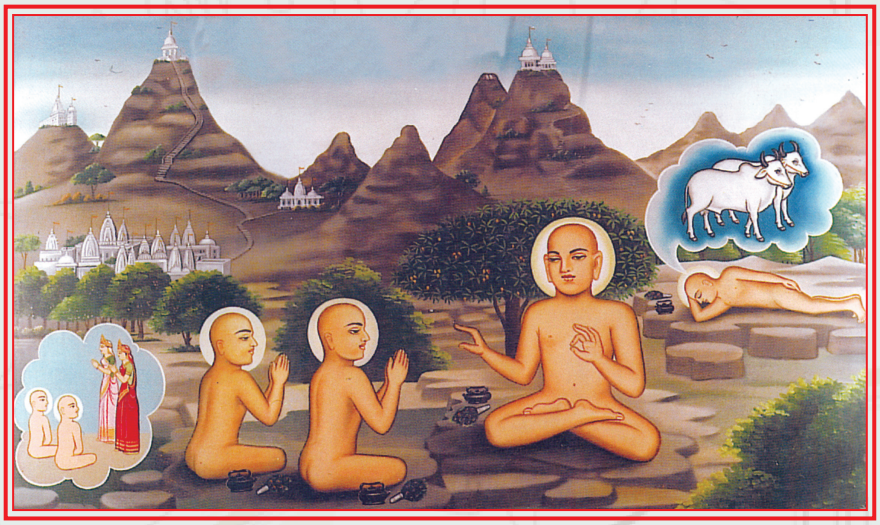

भगवान महावीर के पश्चात् 500 वर्ष तक उनकी वाणी स्मृतिरूप से हमारे मुनिराजों के पास सुरक्षित रही। गिरनार पर्वत पर परमोपकारी मुनिराज श्रीधरसेनाचार्य के ज्ञान में भगवान की वाणी का कुछ अंश ज्यों का त्यों सुरक्षित था। उनके मन में जिनवाणी सुरक्षित करने का भाव आया। इसकी सूचना उन्होंने मुनियों के सम्मेलन में भेजी। कुछ दिन बाद रात्रि में आचार्य ने स्वप्न में दो श्वेत बैल देखे, स्वप्न के फलस्वरूप प्रातःकाल ही उनके पास दो योग्य एवं अतिविनम्र दिगम्बर मुनिराज पुष्पदन्त एवं भूतबली आये। आचार्य ने मन्त्र-साधना द्वारा दोनों की परीक्षाकर उनको अपना शिष्य बनाया और उन्हें ज्ञान प्रदान किया। उन दोनों मुनिराजों ने षट्खण्डागम ग्रन्थ लिपिबद्ध किया। जिस दिन यह ग्रन्थ पूरा हुआ, वह दिन 'श्रुतपंचमी महापर्व' के नाम से विख्यात हुआ।

आचार्य श्री धरसेन जो न ग्रन्थ लिखाते।
हम जैसे बुद्धिहीन तत्त्व कैसे लखाते॥

श्री आदिनाथ कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ एवं कुन्दकुन्द प्रवचन प्रसारण संस्थान, उज्जैन

के संयुक्त तत्त्वावधान में

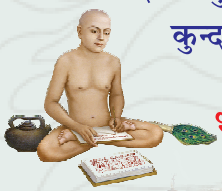

भगवान महावीर निर्वाण महोत्सव एवं आध्यात्मिक शिक्षण शिविर

(गुरुवार, 24 अक्टूबर से सोमवार, 28 अक्टूबर 2019)

सत्धर्म प्रेमी बन्धुवर!

प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी तीर्थधाम मङ्गलायतन के उन्मुक्त वैदेही वातावरण में, भगवान महावीर का निर्वाण महोत्सव एवं शिक्षण शिविर अध्यात्म, सिद्धान्त एवं जिनवरों की भक्तिपूर्वक सम्पन्न होगा।

इस शिविर में पूज्य गुरुदेवश्री के भवतापहारी सी.डी. प्रवचन, उन्हीं के मार्ग की प्रभावना करनेवाले विद्वानों के स्वाध्याय, पूजन-विधान एवं मङ्गलार्थियों द्वारा तात्विक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किये जायेंगे। प्रतिदिन प्रातः 5 बजे से रात्रि 10 बजे तक विभिन्न विद्वानों के माध्यम से 8 से 10 घण्टे तत्त्वज्ञान श्रवण का अपूर्व अवसर प्राप्त होगा। सभी तत्त्वप्रेमी महानुभावों से निवेदन है धर्म लाभ लेने हेतु शीघ्र ही पत्र या फोन द्वारा सूचना प्रदान करें।

पत्र व्यवहार का पता— तीर्थधाम मङ्गलायतन, अलीगढ़-आगरा राजमार्ग, सासनी-204216
सम्पर्क सूत्र-9997996346 (कार्या०); 9756633800 (पण्डित सुधीर शास्त्री)
Email : info@mangalayatan.com; website : www.mangalayatan.com

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ.प्र.) का

मासिक मुखपत्र

वर्ष-19, अङ्क-6 (वी.नि.सं. 2545; वि.सं. 2075) जून 2019

षट्खण्ड आगम ग्रन्थ की....

षट्खण्ड आगम ग्रन्थ की महिमा जगत-विख्यात है।
यह प्रथम श्रुतस्कन्ध जिसमें जैनशासन व्याप्त है॥
ज्यों चक्रवर्ती जीतते षट्खण्ड को पुरुषार्थ से।
त्यों जानकर षट् द्रव्य भविजन सुख लहें निज अर्थ से॥1॥

धरसेन गुरु कुछ अंग एवं पूर्व के ज्ञाता हुए।
गिरनार गिरि पर शुद्ध आतम के परम ध्याता हुए॥
भूतबलि अरु पुष्पदन्त महामुनि निर्ग्रन्थ थे।
सूक्ष्म प्रज्ञा के धनी वे पथिक थे शिवपंथ के॥2॥

श्रुतज्ञान पा धरसेन गुरु से उभय मुनिवर धन्य थे।
षट् खण्ड आगम ग्रन्थ रचना कर निजात्म अनन्य थे॥
वीरसेन महामुनि टीका रची धवला अहा।
जिसका पठन कर धवल-धी से भव्य सुख पाते महा॥3॥

श्रुत-सेवनमय अर्घ्य यह, भविजन को सुखकार।
जिन आगम अभ्यास ही, पद अनर्घ्य दातार।

संस्थापक सम्पादक
स्व. पण्डित कैलाशचन्द्र जैन, अलीगढ़
मुख्य सलाहकार
श्री बिजेन्द्रकुमार जैन, अलीगढ़
सम्पादक
डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन
सह सम्पादक
पण्डित सुधीर जैन शास्त्री, मङ्गलायतन
सम्पादक मण्डल
ब्रह्मचारी पण्डित ब्रजलाल शाह, वढ़वाण
बाल ब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़
डॉ. राकेश जैन शास्त्री, नागपुर
श्रीमती बीना जैन, देहरादून
सम्पादकीय सलाहकार
पण्डित रतनचन्द भारिल्ल, जयपुर
पण्डित विमलदादा झाँझरी, उज्जैन
श्री चिरंजीलाल जैन, भावनगर
श्री प्रवीणचन्द्र पी. वोरा, देवलाली
श्री वसन्तभाई एम. दोशी, मुम्बई
श्री श्रेयस् पी. राजा, नैरोबी
श्री विजेन वी. शाह, लन्दन
मार्गदर्शन
डॉ. किरीटभाई गोसलिया, अमेरिका
पण्डित अशोक लुहाड़िया, अलीगढ़

इस अङ्क के प्रकाशन में सहयोग-
श्रीमती सूर्याबहिन
धर्मपत्नी
महेन्द्रशाह 'मन्नूभाई'
13 - एशले रोड, नार्थटन
हीथ, सरे - सी.आर. 7 6
एच.डब्ल्यू. (यू.के.)

क्या - कहाँ

श्रुतपंचमी पर पर विशेष	5
वीतरागी-विज्ञान में ज्ञात होता	10
प्रथम प्रवचन	16
निश्चय सम्यग्दर्शन का मार्ग	23
संसारतत्त्व	27
आचार्यदेव परिचय	29
उपदेश सिद्धांत रत्नमाला	31
समाचार-सार	33

शुल्क :
वार्षिक : 50.00 रुपये
एक प्रति : 04.00 रुपये

श्रुतपंचमी पर पर विशेष

अग्रायणीय पूर्वांश के ज्ञाता आचार्य धरसेन के ज्ञान को कुशाग्रबुद्धि से धरण करनेवाले भगवान श्री पुष्पदंत व भूतबलि आचार्य से दिगम्बर समाज का प्रत्येक व्यक्ति परिचित है। ऐसे महान आचार्यवरों के जीवन के बारे में भविष्यवाणीवत् आख्यान करती कथा 'श्रुतावतार' में दी गई है, वह इस प्रकार है —

'भरतक्षेत्र के बांमिदेश-ब्रह्मदेश में वसुंधरा नाम की नगरी होगी। वहाँ के राजा नरवाहन और रानी सुरूपा, पुत्र न होने के कारण खेदखिन्न होंगे। उस समय सुबुद्धि नाम का सेठ उन्हें पूजा करने का उपदेश देगा। तद्नुसार पूजा करने पर राजा को पुत्रलाभ होगा और उस पुत्र का नाम 'पद्म' रखा जाएगा। तदंतर राजा सहस्त्रकूट चैत्यालय का निर्माण कराएगा और प्रतिवर्ष यात्रा करेगा। सेठ भी राजकृपा से स्थान-स्थान पर जिनमंदिरों का निर्माण कराएगा। इसी समय बसंत ऋतु में समस्त संघ यहाँ एकत्र होगा और राजा सेठ के साथ जिनपूजा करके रथ चलावेगा। इसी समय राजा अपने मित्र मगधसम्राट को मुनींद्र हुआ देख, सुबुद्धि सेठ के साथ विरक्त हो दिगम्बरी दीक्षा धारण करेगा। इसी समय एक लेखवाहक वहाँ आएगा। वह जिनदेव को नमस्कार कर मुनियों की तथा परोक्ष में धरसेन गुरु की वंदना कर लेख समर्पित करेगा। वे मुनि उसे पढ़ेंगे कि गिरनार के समीप गुफावासी धरसेन मुनिश्वर अग्रायणीय पूर्व की पंचम वस्तु के चौथे प्राभृतशास्त्र का व्याख्यान आरंभ करनेवाले हैं। धरसेन भट्टारक कुछ दिनों में नरवाहन और सुबुद्धि नाम के मुनियों को पठन, श्रवण और चिंतन कराकर आषाढ़ शुक्ला एकादशी को शास्त्र समाप्त करेंगे। उनमें से एक की भूत (व्यंतरजाति के देव) रात्रि को बलिविधि (पुष्पों से पूजा) करेंगे और दूसरे के चार दाँतों को सुंदर बना देंगे। अतएव भूत-बलि के प्रभाव से नरवाहन मुनि का नाम भूतबलि और चार दाँत समान हो जाने से सुबुद्धिमुनि का नाम पुष्पदंत होगा।'

इस आख्यान के बारे में इतिहासविदों के भिन्न-भिन्न मत होने पर भी, इससे यह फलित होता है, कि भगवान पुष्पदंत आचार्य व भूतबलि आचार्य का दीक्षा नाम कुछ अन्य था, परंतु प्रसिद्ध कथान्यास से उनके नाम 'पुष्पदंत और

भूतबलि' रखा गया था। उपरोक्त भविष्यवाणी में इतिहासविदों के भिन्न-भिन्न मत होने से उसे गौण करके इतिहासकारों के अभिप्राय अनुसार आचार्य पुष्पदंत वसुंधरा नगरी के राजा नरवाहन थे। आचार्य पुष्पदंत राजा जिनपालित के समकालीन तथा उनके मामा थो। इस पर से यह अनुमान किया जा सकता है, कि राजा जिनपालित की राजधानी वनवास ही आपका जन्मस्थान है। आप वहाँ से चलकर अर्हद्बलि आचार्य के स्थान पुण्ड्रवर्धन आये और उनसे दीक्षा लेकर तुरंत उनके साथ ही महिमानगर चले गए जहाँ अर्हद्बलि ने बृहद् यति सम्मेलन एकत्रित किया था।

जब महिमानगरी में सम्मिलित यतिसंघ को धरसेनाचार्य के समाचार मिले, तब आचार्यवर अर्हद्बलि ने श्रुत-रक्षासंबंधी उनके अभिप्राय को समझकर अपने संघ में से दो साधु चुने। वे दोनों साधु विद्याग्रहण करने और उसका स्मरण रखने में समर्थ, अत्यंत विनयशील, शीलवान, देश, कुल, जाति से शुद्ध और समस्त कलाओं में पारंगत थे। उन दोनों को धरसेनाचार्य के पास गिरिनगर (गिरनार) भेज दिया। धरसेनाचार्य ने उनकी परीक्षा की। एक को अधिकाक्षरी और दूसरे को हीनाक्षरी मंत्र-विद्या देकर उन्हें षष्ठोपवास से सिद्ध करने को कहा। जब विद्याएँ सिद्ध हुई तो एक बड़े-बड़े दाँतोंवाली और दूसरी कानी, देवी प्रगट हुई। उन्हें देखकर चतुर साधक मुनियों ने जान लिया, कि उनके मंत्रों में कुछ त्रुटि है। उन्होंने स्वयं विचारपूर्वक उन (मंत्रों) को सुधारकर पुनः साधना की, जिससे देवियाँ अपने स्वाभाविक सौम्यरूप में प्रकट हुई। उनकी इस कुशलता से गुरु ने जान लिया, कि ये दोनों सिद्धांत सिखाने के योग्य पात्र हैं। फिर उन्हें क्रम से सब सिद्धांत पढ़ा दिया। यह श्रुताभ्यास आषाढ़ शुक्ला एकादशी को समाप्त हुआ। उसी समय देवों ने पुष्पोपहारों द्वारा, शंख, तूर्य और वादित्रों की ध्वनि के साथ आचार्य नरवाहन की बड़ी पूजा की। इसी से आचार्यश्री ने उनका नाम भूतबलि रखा। दूसरी ओर आचार्य सुबुद्धि की दंतपंक्ति अस्तव्यस्त थी, उसे देवों ने ठीक कर दी, इससे उनका नाम पुष्पदंत रखा गया। ये दो आचार्य पुष्पदंत और भूतबलि षट्खंडागम के रचयिता हुए।

आचार्य पुष्पदंतजी ने गुरु से ज्ञान प्राप्त करके अपने सहधर्मी भूतबलिजी के

साथ, धरसेन गुरु की आज्ञा अनुसार उनसे विनयपूर्वक विदा लेकर आषाढ़ शुक्ल 11 को पर्वत से नीचे आ गए और वहाँ से निकट अंकलेश्वर में चातुर्मास किया। चातुर्मास दरम्यान दोनों आचार्यों ने आपस में उपदेश की बहुत गंभीर चर्चा कर उपदेश को अवगाहन किया। अंकलेश्वर चातुर्मास पश्चात् आचार्य पुष्पदंत [1]वनवास नगर चले गए। कुछ समय अंकलेश्वर की ओर विहार करते-करते भूतबलि [2]द्रविड़ देश चले गए।

पुष्पदंत आचार्य ने अपने भांजे राजा जिनपालित को दीक्षा देकर उन्हें सिद्धांत का अध्ययन कराया। उसके निमित्त आपने 'बीसदी सूत्र' नामक एक ग्रंथ की रचना की, जिसे अवलोकन के लिए आपने उन्हीं के साथ भूतबलिजी के पास भेज दिया।

इस रचना के बारे में यह भी किवदंति है कि गिरिनगर से वापस लौटते समय आचार्य पुष्पदंत व आचार्य भूतबलि ने अंकलेश्वर (जिला-भरूच, गुजरात) में चातुर्मास बिताया व आचार्य पुष्पदंत के चले जाने के पश्चात् भी आचार्य भूतबलि वहाँ सजोत (अंकलेश्वर के पास) के जंगलों में रहे। पुष्पदंत आचार्य द्वारा भेजे गए 'बीसदी सूत्र' आचार्य भूतबलि को यहीं मिला। भूतबलि आचार्य ने आचार्यदेव की अल्पायु जानकर 'महाकर्म-प्रकृतिपाहुड़' के विच्छेद-भय से द्रव्यप्रमाण से लगाकर आगे की ग्रंथ रचना **ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी** को पूर्ण की। अत: **ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी** को चतुर्विध संघ ने षट्खंडागमश्रुत की पूजा की व बड़ा महोत्सव किया। (तब ही से जिनेन्द्र शासन में यह उत्सव गाँव-गाँव में श्रुत पंचमी की पूजा सह बड़े धूमधाम से मनाया जाता है। अध्यात्मतीर्थ सुवर्णपुरी में भी यह उत्सव बड़े भावपूर्ण भावना व उत्साह सह मनाया जाता है।) वहाँ (अंकलेश्वर में) आज भी भूतबलि आचार्य की प्रतिमा विराजमान है।

---

1. वनवास जो कि उत्तर कर्णाटक का ही प्राचीन नाम है। जो तुंगभद्रा और वरदा नदियों के बीच बसा हुआ है। प्राचीनकाल में वहाँ कदम्ब वंश का राज्य था। उसकी राजधानी 'वनवासि' थी; वहाँ अब भी उस नाम का गाँव विद्यमान है।
2. जो कि दक्षिण भारत का वह भाग है, जो चेन्नाई (मद्रास) के सेरिंगपट्टम और कामोरिन तक फैला हुआ है और जिसकी प्राचीन राजधानी कांचीपुरी थी।

तत्पश्चात् जिनपालित मुनि के साथ आचार्य भूतबलि ने पूर्ण रचना आचार्य पुष्पदंत के पास भेज दी; जिसे आचार्यवर पुष्पदंत देखकर बहुत ही प्रसन्न हुए और वहाँ भी चतुर्विध संघ ने षट्खंडागम शास्त्र की पूजा की व बड़ा उत्सव किया।

इस तरह षट्खंडागम शास्त्र के रचयिता आचार्य पुष्पदंत व भूतबलि दिगम्बर शासन की पट्टावलियों में धरसेनाचार्य के पश्चात्, पुष्पदंताचार्य का 30 वर्ष का समय दिखाया गया है। उसके पश्चात् भूतबलि आचार्य का काल दिखाया गया है। इस पर से यह प्रतीत होता है कि पुष्पदंत आचार्य भूतबलि आचार्य से ज्येष्ठ थे।

यद्यपि जैसा कसायपाहुड़ सिद्धांत ग्रंथ प्राचीन है, वैसा ही यह षट्खंडागम सिद्धांत ग्रंथ भी प्राचीन है; फिर भी दोनों की रचना शैली में काफी अंतर है; भगवान की दिव्यध्वनि में से गणधर भगवंत ने जो 12 अंग व 14 पूर्वों की रचना की, उसमें से कसायपाहुड़ की रचना पंचमपूर्व-ज्ञानप्रवादपूर्व से की गई थी; जबकि षट्खंडागम दूसरे पूर्व-अग्रायणी पूर्व से की गई है। कसायपाहुड़ में जहाँ जीव के परिणाम व मोहनीय कर्म संबंधित ही चर्चा है; वहाँ षट्खंडागम शास्त्र में जीव के परिणाम व आठों कर्म संबंधित चर्चा है। कसायपाहुड़ की टीका ग्रंथ का नाम जयधवला टीका है; जबकि षट्खंडागम शास्त्र की टीका का नाम धवला व छठवें खंड की टीका का महाधवला है। कसायपाहुड़ पद्य रचना है; वहाँ षट्खंडागम गद्य रचना है।

आचार्य पुष्पदंत व भूतबलि के माता-पिता या दीक्षा गुरु का कोई सुस्पष्ट इतिहास ज्ञात नहीं होता है, फिर भी कुछ आधारों से विद्वानों के मतानुसार पुष्पदंत आचार्य की कर्णाटक में ही जन्मस्थली रही हो।

विद्वानों का दोनों आचार्य के समय में भिन्न-भिन्न मत हैं। फिर भी विशेष तौर पर दोनों आचार्यों का समय क्रमशः वी. नि. सं. 593-633 (ई. सं. 66-106) व वी. नि. सं. 593-683 (ई. सं. 66-156) सुयोग्य प्रतीत होते हैं।

भगवान अर्हद्बलि आचार्य से आचार्यदेव धरसेनजी की जो परंपरा चली, वही यहीं पूर्ण हो जाती है।

षट्खंडागम रचयिता आचार्यदेव पुष्पदंत व भूतबलि भगवंत को कोटि-कोटि वंदन।

परमागमश्री षट्खंडागम का उद्गमस्थान

प्रथम श्रुतस्कंधस्वरूप 'षट्खंडागम' शास्त्र के उद्गमस्थान का संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जा रहा है। इससे वाचकगण द्वादशांग जिनवाणी की विशदता, गंभीरता व विस्तीर्णता से अवगत हो सकें। इस प्रथम श्रुतस्कंध की रचना सर्व प्रथम ज्येष्ठ शुक्ला-5 को पूर्ण हुई व इस दिन चतुर्विध संघ ने माँ जिनवाणी की बहुत ही भावविभोर होकर पूजा-भक्ति की। तब से यह दिन श्रुतपंचमी के रूप में मनाया जाता है। पूज्य गुरुदेवश्री के पावन प्रताप से उन पूज्य पुरुषों के समय से यह पर्व षट्खंडागमादि सिद्धांतग्रंथों की पूजा भक्ति सह स्वर्णपुरी में बहुत ही आनंदोल्लासपूर्ण मनाया जाता है।

इस 'षट्खंडागम' ग्रंथ में आत्मा व कर्म के निमित्त-नैमित्तिक संबंध से आत्मा की विविध अवस्थाओं द्वारा आत्मा का विस्तृत स्वरूप बड़ी गंभीरता से दिखाया गया है। ऐसे सिद्धांतग्रंथों का हेतु व स्वाध्याय का फल सम्यग्ज्ञान-चंद्रिकाकार अनुसार अज्ञान का विनाश, सम्यग्ज्ञान की उत्पत्ति, प्रतिसमय अनंत गुणश्रेणी निर्जरा होना, तदुपरांत बाह्य अभ्युदय तथा नि:श्रेयसता की प्राप्ति होना है। इस ग्रंथ की रचना विक्रम की दूसरी शताब्दी में हुई है, ऐसा विद्वानों का मत है। यह कोई एक धारावाहिक अखंड ग्रंथ नहीं है। परंतु इसके छहों खंड, 12 अंग के अलग-अलग पूर्व के विषयों से बना है। इसलिए यह छह खंडों का एक 'षट्खंडागम' नामक ग्रंथ बना है। इस 'षट्खंडागम' शास्त्र पर भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने 'परिकर्म' नामक टीका लिखी थी, जो वर्तमान में अनुपलब्ध है।

भगवान श्री वीरसेनाचार्यदेव ने ई.सं. 770 से 827 के बीच इस ग्रंथ पर 72 हजार श्लोक प्रमाण 'धवला' टीका लिखी है तथा भगवान श्री भूतबली आचार्य ने इस ग्रंथ के छठवें खंड की 30-40 हजार श्लोक प्रमाण 'महाधवल' नामक टीका लिखी है। ये सब ग्रंथाधिराज पूज्य गुरुदेवश्री के पूर्व 'दर्शनीय' मात्र थे। काल की कोई उत्तम विधि से श्रुतलब्धिवंत पूज्य गुरुदेवश्री के समय में 'धवलादि' शास्त्र जो मूलप्रति के रूप में गुप्त थे, वे प्रकाशित होकर प्रकाश में आये।

साभार : भगवान महावीर की आचार्य परंपरा

वीतरागी-विज्ञान में ज्ञात होता

— विश्व के ज्ञेय पदार्थों का स्वभाव —

सदवट्ठिदं सहावे दव्वं दव्वस्स जो हि परिणामो।
अत्थेसु सो सहावो ट्ठिदिसं भवणाससंबद्धो ॥99॥
सदवस्थितं स्वभावे द्रव्यं द्रव्यस्य यो हि परिणामः।
अर्थेषु स स्वभावः स्थितिसंभवनाशसंबद्धः ॥99॥

''द्रव्यो स्वभाव विषे अवस्थित, तेथी 'सत' सौ द्रव्य छे;
उत्पाद-ध्रौव्य-विनाशयुत परिणाम द्रव्यस्वभाव छे'' ॥99॥

यह गाथा अलौकिक है। इस गाथा में आचार्यदेव ने वस्तु के स्वभाव का रहस्य भर दिया है। उत्पाद-व्यय-ध्रुवयुक्त परिणाम, वह वस्तु का स्वभाव है और उस स्वभाव में द्रव्य नित्य अवस्थित है, इसलिए द्रव्य सत् है।

यहाँ द्रव्य के समय-समय के परिणाम में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य समझाने के लिए आचार्यदेव क्षेत्र का उदाहरण देते हैं। द्रव्य का—(आत्मा का) असंख्यप्रदेशी क्षेत्र एक साथ खुला-फैला हुआ है, इससे वह झट लक्ष्य में आ जाये, इसलिए उस क्षेत्र का उदाहरण देकर परिणाम के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य समझाते हैं।

जिस प्रकार द्रव्य को सम्पूर्ण विस्तारक्षेत्ररूप से लक्ष्य में लिया जाये तो उसका वास्तु (क्षेत्र) एक है, उसी प्रकार सम्पूर्ण द्रव्य के तीनों काल के समय-समय के परिणामों को एक साथ लक्ष्यों में लिया जाये, तो उसकी वृत्ति एक है; तथापि जिस प्रकार क्षेत्र में प्रदेशक्रम है, उसी प्रकार द्रव्य के परिणमन में प्रवाहक्रम है। द्रव्य के विस्तार क्रम का अंश, वह प्रदेश है, उसी प्रकार द्रव्य के प्रवाहक्रम का अंश, सो परिणाम है।

देखो, यह ज्ञेय अधिकार है। समस्त ज्ञेय सत् हैं और उन्हें जाननेवाला ज्ञान है। समस्त ज्ञेय जैसे हैं, वैसे एक साथ ज्ञान में ज्ञात होते हैं। यहाँ आत्मा ज्ञान का सागर है और सामने स्व -पर समस्त ज्ञेयों का सागर भरा पड़ा है। बस, इसमें मात्र वीतरागता ही आयी; ज्ञेय में 'यह ऐसा क्यों' ऐसा राग-द्वेष या फेरफार करना

नहीं रहा। अहो! आचार्यदेव ने प्रत्येक गाथा में वीतरागी बर्फी के पर्त लगाये हैं, प्रत्येक गाथा में से वीतरागता के टुकड़े निकलते हैं।

समयसार के सर्वविशुद्ध ज्ञान अधिकार में द्रव्य अपने क्रमबद्ध-परिणाम से उत्पन्न होता है—यह बात करके वहाँ सम्यग्दर्शन का सम्पूर्ण विषय बतलाया है—द्रव्यदृष्टि करायी है और यहाँ ज्ञानप्रधान कथन है। इससे समस्त द्रव्य परिणमनस्वभाव में स्थिर हैं—ऐसा कहकर पूर्ण ज्ञान और पूर्ण ज्ञेय बतलाये हैं—ऐसे सर्व ज्ञेयों के स्वभाव और उन्हें जाननेवाले ज्ञानस्वभाव की श्रद्धा करना, सो सम्यग्दर्शन है।

प्रत्येक आत्मा, प्रत्येक परमाणु और धर्मास्तिकाय आदि द्रव्य पृथक्-पृथक् स्वंयसिद्ध पदार्थ हैं। सामान्यतया देखने पर उस प्रत्येक द्रव्य का क्षेत्र अखण्ड एक है, तथापि उस क्षेत्र के विस्तार का जो सूक्ष्म अंश है, वह प्रदेश है। छह द्रव्यों में से परमाणु और काल का क्षेत्र तो एक प्रदेश ही है। आत्मा का असंख्यप्रदेशी क्षेत्र है। वह समग्रपने द्वारा एक होने पर भी, उसका अन्तिम अंश प्रदेश है। इस प्रकार यहाँ क्षेत्र का दृष्टान्त है और सिद्धान्तरूप में वस्तु के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य परिणामों को समझाना है। जिस प्रकार असंख्य-प्रदेशी विस्तार एक साथ लेने से द्रव्य का क्षेत्र एक है, उसी प्रकार प्रत्येक द्रव्य की अनादि-अनन्त परिणमन धारा समग्रपने के द्वारा एक है और उस सम्पूर्ण प्रवाह का छोटे से छोटा एक अंश, सो परिणाम है। प्रत्येक परिणाम को पृथक् किये बिना समग्ररूप से द्रव्य के अनादि-अनन्त प्रवाह को देखने पर वह एक है; अनादि निगोद से लेकर अनन्त सिद्धदशा तक द्रव्य का परिणमन प्रवाह एक ही है। जिस प्रकार सम्पूर्ण क्षेत्र एक साथ फैला हुआ पड़ा हुआ है, उसमें प्रदेशभेद से न देखा जाये, तो द्रव्य का क्षेत्र एक ही है। उसी प्रकार त्रिकाली द्रव्य के प्रवाह में परिणाम का भेद न किया जाये तो सम्पूर्ण प्रवाह एक ही है, और उस त्रैकालिक प्रवाहक्रम का प्रत्येक अंश, सो परिणाम है।

यहाँ प्रदेशों का विस्तारक्रम क्षेत्र अपेक्षा से है और परिणामों का प्रवाहक्रम परिणमन अपेक्षा से है। यहाँ क्षेत्र का दृष्टान्त देकर आचार्यदेव परिणामों का स्वरूप समझाना चाहते हैं।

यह ज्ञान में ज्ञात होनेयोग्य ज्ञेयपदार्थों का वर्णन है। कोई कहे कि ऐसी सूक्ष्म बात कैसे ज्ञात हो?—किन्तु भाई! यह सब ज्ञेय हैं, इसलिए अवश्य ज्ञात हो

सकते हैं; और तेरा ज्ञानस्वभाव समस्त ज्ञेयों को जान सकता है। आत्मा ज्ञाता है और स्वयं स्वज्ञेय भी है तथा अन्य जीव—पुद्गलादि परज्ञेय हैं। उस ज्ञान और ज्ञेय को कैसा प्रतीति में लेने से सम्यक्त्व होता है, उसकी यह बात है।

धर्मास्तिकाय आदि के असंख्य प्रदेश ऐसे के ऐसे बिछे-फैले हुए हैं, आकाश के अनन्त प्रदेश ऐसे के ऐसे बिछे-फैले हुए हैं; उनमें कभी एक भी प्रदेश का क्रम आगे-पीछे नहीं होता; उसी प्रकार द्रव्य का अनादि-अनन्त प्रवाहक्रम भी कभी खण्डित नहीं होता। प्रवाहक्रम कहकर आचार्यदेव ने अनादि-अनन्त ज्ञेयों को एक साथ स्तब्ध बतला दिया है। 'प्रवाहक्रम' कहने से समस्त परिणामों का क्रम व्यवस्थित ही है, कोई भी परिणाम-कोई भी पर्याय आगे-पीछे नहीं होती। इस प्रतीति में ही द्रव्यदृष्टि और वीतरागता है।

समय-समय के परिणामों का एकदम सूक्ष्म सिद्धान्त समझाने के लिए प्रदेशों का उदाहरण दिया है, वह भी सूक्ष्म मालूम होता है। भीतर अपने लक्ष्य में यदि वस्तु का ख्याल आवे तो समझ में आ सकता है। 'यह स्वरूप इस प्रकार कहना चाहते हैं'—ऐसा अन्तर में अपने को भास होना चाहिए। समझने के लिए जीने (सीढ़ी) का दृष्टान्त लेते हैं:—जिस प्रकार क्षेत्र से देखने पर पूरा जीना ऐसे का ऐसा स्थित है, उसका छोटा अंश प्रदेश है; और जीने की लम्बाई से देखने पर एक के बाद एक सीढ़ियों का प्रवाह है, पूरे जीने का प्रवाह एक है, उसकी एक-एक सीढ़ी उसके प्रवाह का अंश है। उन सीढ़ियों के प्रवाह का क्रम टूटता नहीं है। दो सीढ़ियों के बीच में भी छोटे-छोटे भाग किये जायें तो अनेक भाग होते हैं, उस चढ़ते हुए प्रत्येक सूक्ष्म भाग को परिणाम समझना चाहिए। उसी प्रकार आत्मा असंख्य प्रदेशों में फैला हुआ एक है और उसके क्षेत्र का प्रत्येक अंश, सो प्रदेश है; और सम्पूर्ण द्रव्य का अस्तित्व अनादि-अनन्त प्रवाहरूप से एक है तथा उस प्रवाह के प्रत्येक समय का अंश, सो परिणाम है। उन परिणामों का प्रवाहक्रम जीने की सीढ़ियों की भाँति क्रमबद्ध है, उन परिणामों का क्रम आगे-पीछे नहीं होता। इसलिए सबकुछ जैसा है, वैसा जानना ही आत्मा का स्वभाव है। इसके अतिरिक्त बीच में दूसरा कुछ डाले तो उसे वस्तु के सत्स्वभाव की श्रद्धा नहीं है। वस्तु जैसी हो, वैसा जाने-माने तो ज्ञान-श्रद्धा सच्चे हों न! वस्तु

जैसी हो, उससे अन्य प्रकार से माने तो ज्ञान-श्रद्धा सच्चे नहीं होते; इसलिए धर्म नहीं हो सकता।

यहाँ क्षेत्र के दृष्टान्त से परिणाम का स्वरूप समझाया है।

जिस प्रकार द्रव्य का क्षेत्र का विस्तार, और विस्तारक्रम के अंश, सो प्रदेश। उसी प्रकार द्रव्य का परिणमन, सो प्रवाह और प्रवाहक्रम के अंश, सो परिणाम।

इस प्रकार क्षेत्र के दृष्टान्त द्वारा परिणाम सिद्ध करके एक बात पूरी की; अब उन परिणामों का एक दूसरे में अभाव बतलाते हैं।

'जिस प्रकार विस्तारक्रम का कारण प्रदेशों का परस्पर व्यतिरेक है, उसी प्रकार प्रवाहक्रम का कारण परिणामों का परस्पर व्यतिरेक है।'

द्रव्य में विस्तारक्रम अर्थात् क्षेत्र अपेक्षा से विस्तार का कारण प्रदेशों का परस्पर भिन्नत्व है। पहले प्रदेश का दूसरे में अभाव, दूसरे का तीसरे में अभाव—इस प्रकार प्रदेशों के भिन्न-भिन्नपने के कारण विस्तारक्रम रचा हुआ है। यदि प्रदेशों का एक-दूसरे में अभाव न हो, और एक प्रदेश दूसरे प्रदेश में भी भावरूप से वर्तता हो अर्थात् सब मिलकर एक ही प्रदेश हो तो द्रव्य का विस्तार ही न हो, किन्तु द्रव्य एकप्रदेशी ही हो जाये। इसलिए विस्तारक्रम करने से ही प्रदेश एक-दूसरे के रूप से नहीं है, ऐसा आ जाता है। 'विस्तारक्रम' अनेकता का सूचन करता है, क्योंकि एक में क्रम नहीं होता। अब, अनेकता कब निश्चित होती है ? सबमें एकता न हो किन्तु भिन्नता हो, तभी अनेकता निश्चित होती है और अनेकता हो, तभी विस्तारक्रम होता है; इसलिए विस्तारक्रम का कारण प्रदेशों का परस्पर व्यतिरेक है।

इसी प्रकार अब विस्तारक्रम की भाँति प्रवाहक्रम का स्वरूप कहा जाता है। 'प्रवाहक्रम' कहते ही परिणामों की अनेकता सिद्ध होती है, और परिणामों की अनेकता कहते ही एक का दूसरे में अभाव सिद्ध होता है। क्योंकि यदि एक का दूसरे में अभाव हो, तभी अनेकता हो। यदि ऐसा न हो तो सब एक ही हो जाये। इसलिए विस्तारक्रम में जिस प्रकार एक प्रदेश का दूसरे में अभाव है, उसी प्रकार प्रवाहक्रम में एक परिणाम का दूसरे में अभाव है। इस प्रकार परिणामों में एक का दूसरे में अभाव होने से, अनादि-अनन्त प्रवाहक्रम रचा हुआ है, ऐसा द्रव्य का स्वभाव है; ऐसे परिणामस्वभाव में द्रव्य स्थित है।

यहाँ विस्तारक्रम तो दृष्टान्तरूप है और प्रवाहक्रम सिद्धान्तरूप है। दृष्टान्त सर्व प्रकार से लागू नहीं होता। पुद्गल और कालद्रव्य का विस्तार तो एकप्रदेशी ही है, इसलिए उसमें प्रदेशों के परस्पर व्यतिरेक का दृष्टान्त लागू नहीं होता, किन्तु प्रवाहक्रम का जो सिद्धान्त है, वह समस्त द्रव्यों में समान रीति से लागू होता है।

जैसे—25 कमरों के विस्तारवाली दालान कब होती है? यदि वे कमरे क्रमानुसार एक-दूसरे से पृथक् हों, तब। उसी प्रकार आत्मा में असंख्यप्रदेशी विस्तारवाला क्षेत्र कब होता है? जबकि एक प्रदेश का दूसरे प्रदेश में अभाव हो और वे समस्त प्रदेश विस्तारक्रम में अखण्डरूप से एक-दूसरे के साथ सम्बन्धित हों।

इसी प्रकार (-प्रदेशों के विस्तारक्रम की भाँति) द्रव्य का अनादि-अनन्त लम्बा प्रवाहक्रम कब होता है? जबकि एक परिणाम का दूसरे परिणाम में अभाव हो, तब। पहला परिणाम दूसरे परिणाम में नहीं है; दूसरा, तीसरे में नहीं है—इस प्रकार परिणामों में व्यतिरेक होने से द्रव्य में प्रवाहक्रम है। द्रव्य के अनादि-अनन्त प्रवाह में एक के बाद एक परिणाम क्रमशः होते रहते हैं; ऐसे द्रव्य, सो ज्ञेय हैं। ज्ञेय द्रव्य की यथावत् प्रतीति करने से श्रद्धा में निर्विकल्पता और वीतरागता हो, वह मोक्ष का मार्ग है।

अहो! एक ही द्रव्य के एक परिणाम में दूसरे परिणाम का भी जहाँ अभाव है, वहाँ एक द्रव्य की अवस्था में दूसरा द्रव्य कुछ करे—यह तो बात ही कहाँ रहती है? एक तत्त्व दूसरे तत्त्व में कुछ करता है अथवा एक द्रव्य के क्रमपरिणामों में परिवर्तन किया जा सकता है—ऐसा जो मानता है, उसे ज्ञेयतत्त्व की खबर नहीं है और ज्ञेयों को जाननेवाले अपने ज्ञानतत्त्व की भी खबर नहीं है।

कोई ऐसा माने कि 'मैंने अपनी बुद्धि से पैसा कमाया' तो ऐसा नहीं है; क्योंकि बुद्धि के जो परिणाम हुए, वह आत्मा के प्रवाहक्रम में आया हुआ परिणाम है और पैसा आया, वह पुद्गल के प्रवाहक्रम में आया हुआ पुद्गल का परिणाम है। दोनों द्रव्य अपने-अपने प्रवाहक्रम में भिन्न-भिन्नरूप से वर्त रहे हैं। आत्मा अपने परिणामप्रवाह में स्थिर है, और जड़ पदार्थ जड़ के परिणामप्रवाह में स्थित हैं। दोनों पदार्थों का अस्तित्व भिन्न-भिन्न है। जिसने पदार्थों का ऐसा स्वरूप जाना, उसके 'मैं पर के कुछ फेरफार करता हूँ या पर के कारण मुझमें

कुछ फेरफार होता है'—ऐसी मिथ्याबुद्धि तो दूर हो गयी, इसलिए वह समस्त द्रव्यों का ज्ञाता रह गया। केवली भगवान वीतरागरूप से सबके ज्ञाता हैं; उसी प्रकार यह भी ज्ञाता ही है। अभी साधक है, इसलिए अस्थिरताजन्य राग-द्वेष होते हैं, किन्तु वह भी ज्ञाता का ज्ञेय है। ज्ञान और राग की एकतापूर्वक राग-द्वेष नहीं होते किन्तु ज्ञान के ज्ञेयरूप से राग-द्वेष होते हैं। इसलिये अभिप्राय से (श्रद्धा से) तो वह साधक भी पूर्ण ज्ञाता ही है।

यथार्थ वस्तुस्वरूप को जानने से स्वयं छहों द्रव्यों का ज्ञाता हो गया और छहों द्रव्य ज्ञान में ज्ञेय हुए। इस ओर स्वयं एक ज्ञाता और सामने छहों द्रव्य-ज्ञेय—ऐसा ज्ञातापना बतलाने के लिए 'स्वात्मानुभव मनन' में कहा है कि—आत्मा सप्तम द्रव्य हो जाता है।

अहो! ज्ञान ज्ञातास्वरूप से है, उस ज्ञान की प्रतीति निर्विकल्प-सम्यक्त्व का कारण है। प्रतिसमय उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप ऐसे द्रव्यस्वभाव को निश्चय करे तो ज्ञान जानने का ही कार्य करे; और ज्ञेय में 'ऐसा क्यों' ऐसा मिथ्याबुद्धि का विकल्प न आये। अस्थिरता का विकल्प आये, वह तो ज्ञान का ज्ञेय हो जाता है, क्योंकि ज्ञान में स्व-परप्रकाशक सामर्थ्य प्रगट हो गया है, इसलिए वह राग को भी ज्ञान से भिन्न ज्ञेयरूप से जानता है, इसलिए उस विकल्प में 'ऐसा विकल्प क्यों?' ऐसा विकल्प का जोर नहीं आता; किन्तु 'यह राग भी ज्ञेयरूप से सत् है'—ऐसा ज्ञान जान लेता है, इसलिए ज्ञान की ही अधिकता रहती है—दूसरे प्रकार से कहा जाये तो ज्ञान और राग का भेदज्ञान हो जाता है। और पश्चात् भी ऐसे ज्ञानस्वभाव के आधार से ज्ञेयों को जानने से उस ज्ञान का विकास होकर उसकी सूक्ष्मता और वीतरागता बढ़ती जाती है, और क्रमशः पूर्ण वीतरागता और केवलज्ञान होने से सम्पूर्ण लोकालोक ज्ञेयरूप से एक साथ ज्ञान में डूब जाता है। —ऐसा यह अधिकार है।

यहाँ आत्मा में केवलज्ञान का सारा दल और सामने लोकालोक ज्ञेय का दल। बस! ज्ञेय-ज्ञायकस्वभाव रह गया। ज्ञेय-ज्ञायकपने में राग-द्वेष या फेरफार करना कहाँ रहा? अहो! ऐसे स्वभाव का स्वीकार तो कर! इसकी स्वीकृति में वीतरागी श्रद्धा है और उसी में वीतरागता तथा केवलज्ञान के बीज हैं। *क्रमशः*

आत्मधर्म (हिन्दी), वर्ष 7, अंक तीन

श्री समयसार नाटक पर

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीजी का धारावाही प्रवचन

प्रथम प्रवचन

अब सिद्धभगवान की स्तुति करते हैं। "णमो सिद्धाणं" सिद्धपद अर्थात् शरीर रहित दशा। अनंत-अनंत शक्तियों से परिपूर्ण आत्मा का पर्याय में पूर्णरुपेण प्रकट होने को सिद्धदशा कहते हैं। 'शरीर, वाणी, मन आदि रहित अकेला पूर्णप्रकट आत्मा ही वस्तुत: सिद्ध है'।

श्री सिद्धस्तुति

अविनासी अविकार परमरसधाम हैं।
समाधान सरवंग सहज अभिराम हैं।
सुद्ध बुद्ध अविरुद्ध अनादि अनंत हैं।
जगत शिरोमनि सिद्ध सदा जयवंत है ।।4 ।।

अर्थ:- जो नित्य और निर्विकार हैं, उत्कृष्ट सुख के स्थान हैं, साहजिक शान्ति से सर्वांग सुन्दर हैं, निर्दोष हैं, पूर्ण ज्ञानी हैं, विरोधरहित हैं, अनादि अनन्त हैं; वे लोक के शिरोमणि सिद्ध भगवान सदा जयवन्त होवें ।।4 ।।

काव्य - 4 पर प्रवचन

भगवान आत्मा अनादि-अनंत नित्य है। जो सत् है, उसकी न तो कभी उत्पत्ति होती है और न नाश ही होता है। ऐसा आत्मा अनादि से चारों गतियों में परिभ्रमण करता था, जहाँ अकेला दु:ख था। उसका नाश करके अनंत आनंद प्राप्त करने का नाम ही मुक्ति है, सिद्धदशा है और वही परमोत्कृष्ट दशा है, जो परमरसधाम अर्थात् परमसुख का स्थान है।

'समाधान सरवंग' अर्थात् सिद्धभगवान के असंख्य प्रदेशों में शान्ति... शान्ति...शान्ति भरी हुई है। जैसे बर्फ शीतलता की शिला है, वैसे ही भगवान आत्मा अरूपी शांतरस की शिला है। जिन्हें ऐसा शांतरस पूर्ण प्रकट हो गया, वे सिद्ध हैं।

एक भाई पूछते थे कि अशरीरी सिद्ध भगवान किसी का कुछ करते हैं या नहीं ?तो कहा कुछ नहीं करते। इस पर वे बोले तो फिर सिद्ध भगवान किस काम

के ? यहाँ हम भी दूसरों को यथाशक्य करते हैं और भगवान कुछ नहीं करते ? भाई ! यहाँ तू भी क्या करता है ? मात्र अज्ञान के कारण मानता है कि मैं अन्य का कर्त्ता हूँ। ये मेरे कारखानों में पच्चीस-पचास मनुष्य झुकते हैं, नमते हैं; किन्तु ये तो इसके पुण्य से नमते-झुकते हैं उसमे तूने क्या किया ? तू तो अज्ञान से राग और द्वेष करता है। किसी का कुछ भी करने को कोई समर्थ नहीं है। कौन किसका सेठ है ? अन्य का सेठ तो कोई है ही नहीं।

यहाँ तो कहते हैं कि सिद्ध भगवान को सहज परम समाधानरूप शान्ति है। पुण्य-पाप के विकल्प हैं राग है; वह तो अशान्ति है आकुलता है। छोटे-छोटे पक्षी बैठे होते हैं न ! बैठे-बैठे भी पंख फड़फड़ाया करते हैं। चंचलता बहुत होती है। बंदर वृक्ष पर बैठकर भी इधर-उधर फिरा करते हैं, पूँछ आदि हिलाया करते हैं। यह अन्तर की कषाय बाहर शरीर की चेष्टा में दृष्टिगोचर होती है, किन्तु जिन्हें अन्दर में कषाय मिट गई है ऐसे सिद्धों को असंख्यात प्रदेशों में शान्ति...शान्ति वर्तती है, सहज समाधान वर्तता है। भक्ति में आता है न..। 'उपशम रस बरसे रे प्रभु थारा नयन मा...' प्रभु ! जैसे आप शांतरस की शिला हैं वैसा ही मेरा स्वभाव है। उसे प्रकट करके मैं भी आपके समान हो जाऊँ; इसलिए मैं स्तुति करता हूँ।

'समाधान सर्वंग सहज अभिराम है' यह कोई कृत्रिम शान्ति की बात नहीं है। यह तो अतीन्द्रिय अकषाय शान्ति के अंकुर फूटकर अन्तर में शान्ति का प्रवाह हो गया है, उससे प्रभु आप सर्वांग सुंदर हो गये हैं।

"सुद्ध-बुद्ध अविरुद्ध अनादि-अनंत हो," -प्रभु आप तो महाशुद्ध हो, पूर्णज्ञानी हो, विरोधरहित हो, दूसरों को तार दूँ जिन्हें ऐसा विकल्प मात्र भी नहीं है -ऐसी दशा प्रकट हुई है, वे परमात्मा हैं। लोग चाहे जिसे परमात्मा मानकर सिर फोड़ते हैं, उन्हें कहते हैं कि परमात्मा तो ऐसे होते हैं।

जैसे जगत में संसारी जीव अनादि से हैं और अनंत काल रहनेवाले हैं; वैसे ही जगत में सिद्ध अनादि-अनंत हैं। जैसे 'गाड़ी' कहने से उसमें आगे-पीछे का पूरा भाग आ जाता है; वैसे ही 'जगत' कहने से उसमें शरीरसहित और शरीररहित सभी जीव आ जाते हैं। संसारी और सिद्ध अनादि के हैं, कोई आगे-पीछे नहीं हैं।

वे जगत शिरोमणि सिद्ध सदा जयवंत रहो। चौदह ब्रह्माण्ड असंख्यात योजन में स्थित हैं, उसमें सबसे ऊपर के भाग में सिद्ध रहते हैं। लोकाग्र में रहते हैं

–इसकारण सिद्धों को जगत–शिरोमणि कहा है। राजा–महाराजाओं की शादियों के समय सिर के ऊपर छत्र रखते हैं न! वैसे ही सिद्ध परमात्मा जगत में छत्र के स्थान पर हैं।

सिद्ध प्रभु सिद्धालय में पूर्ण निजानन्द में रहते हैं। वहाँ कोई खाना–पीना या नौकर–चाकर नहीं हैं। सदा सहज सुख में निमग्न हैं –ऐसे सिद्ध जयवंत वर्तो। इसप्रकार सिद्ध भगवान की स्तुति हुई।

श्री साधुस्तुति

ग्यान कौ उजागर सहज–सुखसागर,
सुगुन–रतनागर विराग–रस भन्यौ है।
सरन की रीति हरै मरनकौ न भै करै,
करन सौं पीठि दे चरन अनुसन्यौ है ।।
धरमकौ मंडन भरमको विहंडन है,
परम नरम ह्वै कै करमसौं लन्यौ है।
ऐसौ मुनिराज भुवलोक मैं विराजमान,
निरखि बनारसी नमस्कार कन्यौ है।।5।।

अर्थः– जो ज्ञान के प्रकाशक हैं, साहजिक आत्मसुख के समुद्र हैं, सम्यक्त्वादि गुणरत्नों की खानि हैं, वैराग्य–रस से परिपूर्ण हैं, किसी का आश्रय नहीं चाहते, मृत्यु से नहीं डरते, इन्द्रिय–विषयों से विरक्त होकर चारित्र पालन करते हैं, जिनसे धर्म की शोभा हैं, जो मिथ्यात्व का नाश करने वाले हैं, जो कर्मों के साथ अत्यन्त शान्तिपूर्वक लड़ते हैं; ऐसे साधु महात्मा जो पृथ्वीतल पर शोभायमान हैं उनके दर्शन करके पंडित बनारसीदासजी नमस्कार करते हैं।

काव्य – 5 पर प्रवचन

अब बनारसीदासजी साधु की स्तुति करते हैं–

देखो! साधु के गुण कैसे होते हैं उन्हें यहाँ बतलाते हैं। जो स्वरूप को साधते हैं वे साधु हैं। राग को साधे, संयोग को साधे; वह तो अज्ञानी है। सच्चिदानन्द प्रभु आनंद के धाम में अनंत–अनंत शुद्धता का और शान्ति का समाज पड़ा हुआ है –ऐसे स्वरूप को जो निर्विकल्प शुद्धता द्वारा साधते हैं, वे साधु कहलाते हैं।

भगवान आत्मा परम पवित्र शुद्धज्ञान का प्रकाशक है। शुद्धोपयोगी मुनि

ज्ञान के उजागर हैं। चैतन्य-बिम्ब चैतन्य- चमत्कार का प्रकाश करनेवाले हैं। मुनिराज सहज सुख के सागर हैं। सहज अर्थात् जो आत्मजनित सुख है, वह किसी अन्य के द्वारा उत्पन्न नहीं होता; इसकारण जो स्त्री-कुटुंब, भोग, पैसा आदि में सुख की कल्पना करते हैं, वह मिथ्या है; वह सुख नहीं, दु:ख है।

जैसे समुद्र के मध्य बिन्दु में से पानी उछलने से ज्वार आता है; वैसे ही अंतर में स्वरूप के ध्येय को पकड़ने पर साधु की वर्तमान दशा में आनंद का उफान आता है, पर्याय में सुख का सागर उछलता है; मानो सुख का दरिया ही उछल रहा हो। भगवान आत्मा अनंतज्ञान, दर्शनादि गुणों का रत्नाकर है आकर अर्थात् समुद्र है।

प्रश्न:- किन्तु प्रभु! यह दरिया दिखता तो नहीं है न?

समाधान:- अरे बापू! यही दिखता है। जहाँ हो, वहाँ यह दिखता है। यह ऐसा है ऐसा नक्की कौन करता है? अपने अस्तित्व बिना जाने कौन? यह शरीर है, यह राग है - ऐसा जाना किसने? ज्ञानभूमि के अतिरिक्त किस भूमिका में जानने का कार्य होता है? यह ज्ञान है, वही आत्मा है। जहाँ देखो वहाँ आत्मा ही ज्ञात होता है, किन्तु उसके सामने नजर नहीं और पर के सामने ही नजर है - इसकारण ऐसा लगता है कि चैतन्य-चमत्कार तो दिखता नहीं है।

आत्मा ही सम्यक्त्वादि गुणरत्नों की खान है। आत्मा ही श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र, वीर्य, सुख, कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण आदि अनंतगुणों का समुद्र है। स्वयं ही आनंद का कर्त्ता, आनंद का भोक्ता, आनंद का दाता और आनंद का लेनेवाला भी स्वयं ही है। साधु-मुनिराज स्वयं ही आनंद के कर्त्ता व भोक्ता हैं। यह सफल अवतार है। मुनिराज का जन्म सफल है कि जिन्होंने अनंत जन्म-मरण को असफल किया है।

भाई! तूने साधुपद सुना नहीं। साधु के तो गुणरत्नों का सागर फट पड़ा है। साथ ही मुनियों का वैराग्य भी कैसा है! सम्पूर्ण जगत से उदास..उदास कोई वस्तु मेरी नहीं, किसी से मुझे लाभ नहीं, किसी से मैं प्रसन्न नहीं होता, किसी से मैं खिलता या मुरझाता नहीं, दु:खी नहीं होता। ऐसे वैराग्य रस से मुनिराज पूर्ण हैं। देह में भी वैराग्य दिखता है और मुनिराज की वाणी में तो मानो अमृत ही झरता है। जिन्हें अन्तर में अमृतस्वरूप आत्मा का भान है उनकी वाणी में भी मानो अमृत ही झरता है। देखो! ऐसे साधु का हम स्मरण करते हैं।

इसप्रकार समयसार नाटक का प्रारम्भ करते हुए ऐसे अरिहंत, सिद्ध और साधु का स्मरण करके समयसार नाटक को कहूँगा। लोग विवाह के अवसर पर भी अपने प्रियजनों का स्मरण करते हैं न, कि अरे ! ऐसे प्रसंग में अमुक लड़का या लड़की आ नहीं सके। ये सब तो राग के लक्षण हैं, किन्तु यहाँ तो वीतरागी प्रभु को याद करते हैं कि प्रभु ! आपका स्मरण करके हम शास्त्र का प्रारम्भ करते हैं। हम अपने स्वरूप की लगन लगाकर शास्त्र लिखते हैं। उसमे प्रभु ! प्रथम आप पधारो, आपसे ही हमारी शोभा है।

'सरन की रीति हरे' मुनिराज किसी की शरण नहीं लेते। इस मुनिदशा में हमें किसी की शरण हो तो ठीक ऐसा भाव उन्हें नहीं होता। अरे ! जहाँ व्यवहार विकल्प भी शरण नहीं, वहाँ अन्य तो कौन शरण है ?

बनारसीदासजी ने भी क्या रचना की है ! पहले श्रृंगार के काव्य लिखते थे, वहाँ से परिवर्तित होकर अध्यात्म के कितने सुंदर काव्य लिखे हैं !

मुनिराज 'मृत्यु को न भय करे' -आत्मा तो अनादि-अनंत है तो मृत्यु किसकी ? सामने काला नाग आये या केसरिया सिंह आवे, किन्तु वह किसे खायेगा ?शरीर का संयोग है, वह छूट जायेगा, किन्तु मेरे सच्चिदानंद आत्मा का सर्प व सिंह क्या कर सकते हैं ?

इसप्रकार मुनिराज निर्भय और नि:शंक होते हैं।

'करन सो पीठ दे चरन अनुसन्यो है' करन अर्थात् इन्द्रियाँ और उनके विषयों को मुनिराज ने पीठ दी है और चारित्र का अनुसरण किया है। मुनिराज धर्म की स्थापना करते हैं और भ्रम का नाश करते हैं। अतीन्द्रिय आनंद में झूलते -ऐसे संतों से ही धर्म की शोभा है। उनके मिथ्यात्वरूप भ्रम नहीं होता। मुनिराज सर्व इन्द्रिय -विषयों की इच्छा से रहित अतीन्द्रिय स्वरूप को साधते हैं। बनारसीदासजी कहते हैं कि ऐसे मुनियों के स्मरणपूर्वक मैं शास्त्र का प्रारम्भ करता हूँ। यही मांगलिक है।

पण्डित बनारसीदास साधु महात्मा का स्वरूप बतलाकर साधु का स्मरण करके नमस्कार करते हैं। साधु ज्ञान के उजागर हैं अर्थात् ज्ञानानंदस्वरूप आत्मा का प्रकाश करनेवाले है। साधु की भूमिका में राग की क्रिया होती है, शास्त्र की प्ररूपणा होती है, वह बात नहीं ली है; क्योंकि ये कोई स्तुतियोग्य भाव नहीं, ये तो

उपाधिरूप हैं। साधु तो उसे कहते हैं कि जो ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा–चैतन्य के पूर के स्वरूप का प्रकाशन करे, विकास करे, उद्योत करे अर्थात् अन्तर में एकाग्र होकर साधु ज्ञान को विशेष निर्मल करते हैं, प्रकाशित करते हैं।

साधु सहज सुख सागर हैं। संसारी उसे कहते हैं जो राग, द्वेष और अज्ञान का वेदन करता है। इसकारण वह अज्ञानी दु:खसागर में डूबा हुआ है, उसे अन्तर के सुखसागर की खबर ही नहीं है, जबकि साधु को तो वर्तमान पर्याय में अगाध सुखसमुद्र उछल रहा है। साधु तो स्वयं गुणरत्नाकर हैं। सम्यग्दर्शनादि अनंत गुणों के रत्न स्वरूप साधु हैं। जिसे यह भी खबर न हो कि आत्मा क्या है, कैसा है, उसमें क्या भरा है ? और साधु हो जाये, तो इसप्रकार कोई स्वरूप के भान बिना साधु नहीं हुआ जाता।

अस्ति से कहा कि साधु सम्यग्दर्शन, ज्ञान, स्वच्छता, प्रभुता आदि गुणों के रत्नाकर हैं। साधु की वर्तमान दशा में अनंत गुण उछल रहे हैं और नास्ति से कहें तो मुनिराज राग से रहित हैं तथा जगत से उदास हैं। इन्द्र की इन्द्राणियाँ ऊपर से आयें तो भी उन पर मुनिराज का लक्ष्य नहीं जाता। सर्व से उदास ऐसे साधु वैराग्यरस से परिपूर्ण हैं। इसका नाम है 'साधु'।

'सरन की रीति हरे' जिन्होंने मर्यादा रहित अमर्यादित गुणों के सागर की शरण ली है, उन्हें बाहर की किसी शरण की आवश्यकता नहीं है। लोग तो पैसेवालों की शरण लेते हैं, किन्तु मुनिराज को तो जैसे कली खिले –ऐसे आत्मा के अनंत गुणों की कली खिल गई है। उसकी शरण के समक्ष बाहर की किसी शरण की चाह ही नहीं है। बाहर में तो सब अशरण ही है।

अरिहंता शरणं, सिद्धा शरणं कहते हैं न ! किन्तु जिन्हें अंतरस्वरूप की शरण प्रकट हुई है, अनंत गुणों का बगीचा खिल उठा है, उन्हें किसीप्रकार की शरण या उसकी चाहना नहीं होती।

मुनिराज को मरण का भी भय नहीं होता। जगत के जड़ तत्त्व संयोग में स्थित हैं उनकी स्थिति पूर्ण हो तो भले हो, मुझे उनके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। श्रीमद् जी लिखते हैं –

एकाकी विचरुँगा जब शमशान में,
गिरि पर होगा बाघ–सिंह संयोग जब;

अडोल आसन और न मन में क्षोम हो,
जामूँ पाया परम मित्र संयोग जब।

गृहस्थदशा में रहते हुए भी धर्मी मुनिपने की ऐसी भावना भाते है। मुझे शरीर चाहिए नहीं, अत: सिंह आकर उसे खा जाए तो वह मेरा मित्र हुआ, उससे मुझे डर नहीं। अहो! संत ऐसे निर्भय और समतारस के पिण्ड होते हैं। ऐसी संत दशा हमें कब प्रकट होगी! इसप्रकार की भावना धर्मी गृहस्थदशा में रहने पर भी भाते हैं। यहाँ तो ऐसी दशा जिन्हें प्रकट हुई –ऐसे संत–मुनिराज की यह स्तुति है।

'करन सों पीठ दे' –अर्थात् पंचेन्द्रियों को मुनिराज ने पीठ दे दी है, वहाँ से पीछे हटकर चारित्र का अनुसरण किया है, अतीन्द्रिय शांतस्वरूप चारित्र को आदरा है। आनंद के नाथ की रमणता को अनुसरा है। देखो, यह साधु! यहाँ कहीं पर भी यह बात नहीं आई कि अट्ठाईस मूलगुण और पंच महाव्रत पाले, वह साधु है। यद्यपि साधु को ऐसे विकल्प होते हैं तथापि वे कोई गुणरूप नहीं हैं। जो आनंद के धाम का अनुसरण करके स्वरूप में स्थिर हुए हैं, वे साधु हैं। ऐसे साधु–मुनिराज का स्मरण करके वंदना करते हैं।

अहा हा! धर्म का जिनको श्रृंगार है, वे साधु हैं। दर्पण में देखकर शरीर को सुंदर बनाने से आत्मा की शोभा नहीं बढ़ती। आत्मा की शोभा तो धर्म से है। ऐसे धर्म से साधु शोभित होते हैं और साधु से धर्म की शोभा है।

'भरम को विखंडन है' –साधु–मुनिराज ने भ्रम का तो विशेष प्रकार से नाश कर दिया है। बाहर में कही सुख है अथवा आश्रय स्थान है – ऐसी भ्रम बुद्धि का साधु ने नाश कर दिया है।

बनारसीदासजी तो कवि थे न! अत: देखो भाषा भी कैसी प्रयोग में ली है! पहले श्रृंगार रस के रसिया थे तो वैसे काव्य रचते थे, पश्चात् धर्म की रुचि होने से वैसे काव्य रचने लगे। आपने अर्धकथानक में अपना इतिहास लिखा है।

यहाँ कहते हैं कि मुनिराज ने परम नरम होकर अर्थात् अत्यन्त अकषाय स्वभाव के आश्रय से कर्मों के साथ युद्ध शुरु किया है। वे विकल्प को उत्पन्न नहीं होने देते। अहा हा! अंतर में भगवान से भेंट हुई है न! उसकी साक्षी में और शरण में जाकर कर्मों के साथ तो युद्ध प्रारम्भ किया है। कर्मों को पराजित कर स्वयं विजयश्री प्राप्त कर लेते हैं।

देखो! ऐसे साधु होते हैं। जो सिर मुँड़ाकर अमुक क्रिया करके साधुपना

शेष पृष्ठ 26 पर...

आत्मार्थी का पहला कर्त्तव्य (3)

निश्चय सम्यग्दर्शन का मार्ग

यह आत्मा देह से पृथक् पदार्थ है। जिसे आत्मा का कल्याण करना हो – सुखी होना हो – धर्म करना हो अथवा सम्यग्दर्शन प्रगट करना हो, उसे क्या करना चाहिए ? – यह बात चल रही है।

प्रथम तो जीवादि तत्त्वों को पृथक्–पृथक् यथावत् जानना चाहिए। उन नव तत्त्वों के विचाररूप शुभभाव अखण्ड चैतन्यवस्तु में प्रवेश करने के लिए निमित्त होते हैं। जैसे, दरवाजे द्वारा घर में प्रविष्ट हुआ जाता है, लेकिन दरवाजे को साथ लेकर घर में प्रविष्ट नहीं हुआ जाता, उसी प्रकार अंतर के चैतन्यगृह में प्रविष्ट होने के लिए नव तत्त्वों की श्रद्धा करना, वह दरवाजा है–निमित्त है; लेकिन उन नव तत्त्वों के विचार के शुभराग से कहीं अभेद स्वभाव में प्रविष्ट नहीं हुआ जाता और पहले नव तत्त्व के ज्ञानरूप आंगन में आये बिना भी अभेद में नहीं पहुँचा जाता।

अहो! अनंत काल में ऐसी मनुष्यदेह प्राप्त हुई है, उसमें विचार करना चाहिए कि मेरा कल्याण कैसे हो ? अनंत काल में कल्याण नहीं हुआ और निगोदादि अनंत भवों में भटकता फिरा; अब अनंत काल में यह महँगा मनुष्य भव प्राप्त करके आत्मा का कल्याण कैसे हो ? उसकी यह बात है।

जिस प्रकार राजा से मिलने जाये तो पहले द्वारपाल बीच में आता है, उसी प्रकार इस चैतन्य सम्राट की प्रतीति और अनुभव करने के लिए जाते हुए बीच में नव तत्त्व की श्रद्धारूप द्वारपाल आता है। उन नवतत्त्वों का वर्णन हो रहा है, उनमें से जीव, अजीव, पुण्य और पाप – इन चार तत्त्वों का वर्णन हो गया है।

सम्यग्दर्शन कैसे प्राप्त होता है, उसकी यह रीति कही जा रही है। यह सम्यग्दर्शन का उपाय है। आत्मा देहादि परवस्तुओं से भिन्न चैतन्यवस्तु है, उसे वैसा ही मानना, वह सम्यक्श्रद्धा का मार्ग है। जैसे किसी के पास करोड़ रुपये की संपत्ति हो, उसे करोड़ की संपत्तिवाला माने तो सच्चा माना कहलाये, लेकिन करोड़ रुपये की संपत्तिवाले को हजार की संपत्तिवाला ही माने तो वह मान्यता सच्ची नहीं कहलायेगी। करोड़ रुपये की संपत्ति का ज्ञान कर लेने के पश्चात् अपने यहाँ करोड़ रुपये की संपत्ति कैसे हो – यह बात अलग है। उसी प्रकार आत्मा अनंत गुणों का स्वामी, सिद्धभगवान जैसा है, उसे वैसे पूर्ण स्वरूप से प्रथम विकल्प से मानना, वह व्यवहार से जीवतत्त्व की सच्ची मान्यता है, वह

पुण्यपरिणाम है। चैतन्यतत्त्व की निर्विकल्प श्रद्धा करने से पूर्व उसका विकल्प आता है। विकल्प से भी स्वीकृति तो पूर्ण की ही है। आत्मा को सिद्ध समान पूर्ण न माने और क्षणिक विकारवाला ही माने, उसे तो जीवतत्त्व की व्यवहारश्रद्धा भी नहीं है। विकल्प से मन द्वारा भी जो परिपूर्ण जीवतत्त्व को न जाने, उसे परमार्थश्रद्धा नहीं होती। नवतत्त्व की व्यवहारश्रद्धा पुण्य है, धर्म नहीं है। तब फिर बाह्य क्रिया में तो धर्म होगा ही कहाँ से ?

जिस प्रकार मक्खी कफ खाते हुए उसकी चिकनाई में चोंट जाती है, उसी प्रकार अज्ञानी जीव अनादि से चैतन्य को चूककर इन्द्रिय विषयों की रुचि करके उसी में चोंट जाते हैं। किन्तु किंचित् निवृत्ति लेकर - अरे ! मैं कौन हूँ ? यह संसार-परिभ्रमण कैसे दूर हो ? - इस प्रकार जीवादि तत्त्वों का विचार नहीं करते। अभी नवतत्त्व के विचार में भी राग के प्रकार पड़ते हैं; क्योंकि नव तत्त्वों का विकल्प एक साथ नहीं होता किन्तु क्रमानुसार होता है, इससे उसमें रागमिश्रित विचार से नव तत्त्वों का निर्णय करना, वह व्यवहारश्रद्धा है, वह अभी यथार्थ धर्म नहीं किन्तु धर्म का आंगन है और नव तत्त्व के विकल्परहित होकर एक अभेद आत्मा को श्रद्धा में लेना, वह निश्चय श्रद्धा है, वही प्रथम धर्म है।

जिस प्रकार बही-खातों में हिसाब देखें तो संपत्ति का पता लगता है, उसी प्रकार सत्समागम से शास्त्रों का अभ्यास, श्रवण-मनन करे तो खबर पड़े कि जीव-अजीव क्या है।

कोई कहे कि जब तक हम जीते हैं, तब तक तो घर-बार, व्यापारादि के अनेक कार्य हैं, इसलिए जीते दम तक आत्मा की श्रद्धा नहीं हो सकती, हाँ, मरते समय अवश्य कुछ करेंगे ! तो ऐसा कहनेवाले को तत्त्व की रुचि नहीं है, आत्मा को समझने की दरकार नहीं है।

अरे भाई ! इसी समय शरीर, पैसादि समस्त पदार्थों से आत्मा पृथक् ही है, पर का कुछ नहीं कर सकता, तथापि, 'मैं करता हूँ' - ऐसा मानता है, वह अज्ञान है। अभी इस समय पर से भिन्न आत्मा की बात समझता नहीं है और न समझने की रुचि है तो मरते समय कहाँ से लायेगा ?

मैं जीव हूँ और शरीरादि परपदार्थ मुझसे भिन्न अजीव हैं। उन शरीरादि के कार्य आत्मा नहीं करता है, इतनी बात जिन्हें नहीं जमती, उन्हें जीव-अजीवतत्त्व के भिन्नत्व का भान नहीं है।

प्रश्न - लेकिन व्यवहार से तो आत्मा पैसादि प्राप्त कर सकता है न ?

उत्तर – ऐसा नहीं है। पैसा जड़ है, उस जड़ के आने-जाने की अवस्था उसके अपने कारण होती है, आत्मा व्यवहार से भी उसे प्राप्त नहीं कर सकता। आत्मा उसे प्राप्त कर सकता है – ऐसा मानना तो व्यवहारश्रद्धा भी नहीं है। इतने पैसे प्राप्त किये, इसने अमुक कार्य करके यह प्राप्त किया – ऐसा कहा जाता है, वह तो मात्र व्यवहार की भाषा है।

त्रिलोकीनाथ सर्वज्ञ परमात्मा दिव्यध्वनि में उपदेश देते हैं कि – हे जीव ! तू शान्त हो, शान्त हो ! यदि तुझे आत्मा का कल्याण करना हो-धर्म करना हो तो हम कहते हैं कि उसी प्रकार जीव-अजीव को पृथक् समझ! अभेद चैतन्य स्वभाव की निर्विकल्प श्रद्धा करने के लिए, प्रथम रागमिश्रित विचार से जीव-अजीव को पृथक् जानना, वह व्यवहारश्रद्धा है।

जीव और अजीव – यह दो तत्त्व मूलद्रव्य हैं, वह त्रिकाली हैं और शेष सात तत्त्व क्षणिक अवस्थारूप हैं। अवस्था में जो क्षणिक पुण्य-पाप होते हैं, वे जीव के त्रिकाली स्वभाव में से नहीं आये हैं और न जड़ की क्रिया से हुए हैं। जीवद्रव्य में से पुण्य आया – ऐसा माने तो जीव और पुण्यतत्त्व पृथक् नहीं रहते और जड़ की क्रिया से पुण्य माने तो भी अजीव और पुण्यतत्त्व पृथक् नहीं रहते। पुण्य तो क्षणिक अवस्था से होता है। इसप्रकार नवतत्त्व को जाने बिना व्यवहारश्रद्धा भी नहीं होती।

त्रिकाली जीवद्रव्य के लक्ष से पुण्य-पाप उत्पन्न नहीं होते और न परवस्तुओं के कारण पुण्य-पाप होते हैं, किन्तु जीव की एकसमय पर्यंत की अवस्था में अरूपी विकारी शुभाशुभ परिणाम होते हैं, वह पुण्य-पाप हैं।

अब, पाँचवाँ आस्रव तत्त्व है, पहले पुण्य-पापतत्त्व को पृथक् बतलाया और पश्चात् आस्रव तत्त्व का वर्णन करते हुए पुण्य-पाप – दोनों को आस्रव में डाल दिया। इसलिए, पुण्य अच्छा और पाप बुरा – इस प्रकार जो पुण्य-पाप में अंतर मानता है, उसे आस्रवतत्त्व की श्रद्धा नहीं है। पुण्य और पाप – दोनों विकार हैं, आस्रव हैं। उन पुण्य-पाप से रहित – 'सिद्ध समान सदा पद मेरो' – ऐसा विचार करे, वह तो व्यवहार से नवतत्त्व का स्वीकार है। जैसे – किसी के पास से ऋण लिया हो लेकिन अभी चुकाया न हो, इसके पहले उसे पूरा चुकाना स्वीकार करे, वह व्यवहार में-बोलने में साहूकार हुआ कहलाता है। उसी प्रकार चैतन्यद्रव्य की अखंड निधि सिद्ध समान है, अनंत गुण का भंडार है, उसमें एकाग्र होकर उसका अनुभव करनेरूप ऋण चुकाने से पूर्व उसकी व्यवहार से श्रद्धा करना, सो व्यवहार में साहूकारी अर्थात् व्यवहारश्रद्धा है और पश्चात् एक

अखंड चैतन्यद्रव्य की प्रतीति करके उसका अनुभव करना, वह परमार्थ से साहूकारी-परमार्थश्रद्धा है। ऐसे परिपूर्ण आत्मस्वभाव की श्रद्धा करने में किस्तें नहीं होतीं - क्रम नहीं होता, पूर्ण की श्रद्धा के पश्चात् चारित्र में क्रम होता है।

जिसने पुण्य-पाप दोनों तत्त्वों को विकाररूप से समान नहीं जाना, किन्तु पुण्य अच्छा और पाप बुरा - ऐसा भेद माना, उसने आस्रव तत्त्व को नहीं जाना है। जिस प्रकार तालाब में नदी का पानी बाहर से आता है अथवा छिद्रों वाली नौका में बाहर से पानी भरता है, वैसे ही आत्मा में कहीं बाह्य क्रिया से आस्रव भाव नहीं आते, किन्तु पर्यायदृष्टि से जीव की अवस्था में आस्रव भाव होते हैं। आस्रव, त्रिकाली जीवद्रव्य से नहीं होता और न अजीवद्रव्य से ही होता है। अहो! अनेक लोगों को जहाँ नव तत्त्व की भी बराबर खबर नहीं है, वहाँ अंतर स्वभाव की दृष्टि कहाँ से हो? वैसे जीव तो आत्मभान बिना जैसा जन्म लिया वैसे ही कौये-कुत्तों की भाँति अवतार पूर्ण करके, मरकर चले जाते हैं, उन्होंने जीवन में कुछ भी अपूर्व नहीं किया है। बाह्य में कुदेवादि की विपरीत मान्यता छोड़कर, सर्वज्ञदेव द्वारा कथित इन नव तत्त्वों को बराबर जाने, वह तो अभी धर्म की व्यवहार रीति में आया है, अभी परमार्थ धर्म तो उससे पृथक् ही वस्तु है। *क्रमशः*

...पृष्ठ 22 का शेष

प्रथम प्रवचन

मनवाते हैं, वे तो साधु को कलंक लगाते हैं। साधुपद तो परमेश्वर पद है।

मानव होना मुश्किल है तो साधु कहाँ से होय?
साधु हुआ तो सिध हुआ, कहना रहा न कोय।।

जिनकी अंतर की दशा में अतीन्द्रिय आनंद और शान्ति उछल रही है- ऐसे मुनिराज इस पृथ्वीलोक में विराज रहे हैं। ऐसे संत को अन्दर में देखकर मैं (बनारसीदास) वंदन करता हूँ। देखो! यह पृथ्वी पैसेवालों से अथवा सुंदर मनुष्यों से नहीं शोभती, किन्तु संतों से पृथ्वी शोभती है।

मुमुक्षुः- इनकी दृष्टि ही ऐसी है न!

पूज्य गुरुदेवः- अरे, वस्तुस्थिति ही ऐसी है। दृष्टि अलग है अर्थात्? वस्तुस्थिति ही ऐसी है। जिनका आत्मा चैतन्य की चमक से शोभित हो रहा है, उनको मैं नमस्कार करता हूँ। साधु कहने पर उसमें आचार्य, उपाध्याय और साधु तीनों आ जाते हैं।।5।। *क्रमशः*

श्री प्रवचनसार गाथा 271 पर
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीजी का प्रवचन

संसारतत्त्व

गतांक से आगे

संसार कहाँ है ? उसे बतलाकर यह बताया है कि वह कैसे दूर हो। भाई ! तेरी विपरीत मान्यता से ही संसार है, वह अपने स्वभाव की सच्ची श्रद्धा से दूर होगा। न तो बाह्य में संसार है और न बाह्य वस्तुओं को छोड़ने से वह छूटता है। छह महीने के उपवास करके खड़ा-खड़ा सूख जाये और भीतर मंदराग से धर्म माने तथा ऐसा माने कि आहार मैंने छोड़ा है - तो वह जीव संसारतत्त्व का सेवन करनेवाला है। अज्ञानियों की दृष्टि बाह्य संयोग पर है, इससे वे बाह्य क्रिया देखकर उससे धर्म मानते हैं, परन्तु अंतरदृष्टि से देखनेवाले ज्ञानी कहते हैं कि वे जीव विपरीत मान्यता से अधर्म का ही सेवन करते हैं।

मैं चैतन्यबिम्ब ज्ञायकमूर्ति हूँ, आहार मेरे स्वरूप में है ही नहीं - इससे उसे ग्रहण करने या छोड़नेवाला मैं नहीं हूँ - इसप्रकार ज्ञानानन्दस्वभाव का भान करके उसमें लीन रहने से राग की उत्पत्ति ही न हो और आहार का संयोग उसके अपने कारण न हो, उसका नाम उपवास है। उसके बदले बाह्य क्रिया में उपवास और धर्म मनाएँ, वे मिथ्यादृष्टि संसारतत्त्व हैं। वे भले ही द्रवयलिंगी श्रमण हों, तथापि अनंत भावान्तररूप परावर्तन को प्राप्त होते हुए अस्थिर परिणतिवाले रहेंगे। परिणति स्वरूप में स्थित हो तो वह मोक्ष का कारण है। लेकिन जहाँ स्वरूप का यथार्थ निर्णय नहीं है, वहाँ परिणति स्वरूप में स्थिर होगी कहाँ से ? इससे विकार में ही परिणति बदलती रहती है, वही संसार है। विकारीभाव एक-सा नहीं रहता, किन्तु प्रतिक्षण बदलता रहता है। कभी ऐसा शुभभाव करता है कि नवमें ग्रैवेयक का देव होता है और कभी अशुभभाव करके नरक में जाता है। क्षण में पुण्य और क्षण में पाप; कभी महान सम्राट होता है और क्षण में निगोद में जाता है, इसप्रकार विपरीत श्रद्धावाला जीव अनंत भावान्तर के परावर्तन में परिभ्रमण करता है, इससे वह संसारतत्त्व है।

व्रतादि का शुभराग बंध का कारण होने पर भी अज्ञानीजन उसे मुक्ति का

कारण मानते हैं। जिस भाव से बंधन हो, वह भाव मुक्ति का साधन कदापि नहीं हो सकता। पाँचवें-छठवें गुणस्थान में भी सात-आठ कर्म बंधते हैं, बंधनभाव के बिना (बंध के कारणरूप भाव के बिना) कर्म नहीं बंधते, तो वहाँ पाँचवें-छठवें गुणस्थान में कौन सा बंधन भाव है ? वहाँ जो व्रतादि का शुभभाव है, वह बंधन का भाव है, उससे कर्म बंधते हैं। तथापि उस बंधनभाव को मुक्ति का कारण मानते हैं, वे मिथ्यादृष्टि हैं अर्थात् निगोद के भाव का सेवन करनेवाले संसारतत्त्व हैं।

छठवें गुणस्थान में भी सात या आठ कर्म बँधते हैं - ऐसा भगवान ने कहा है, तो वे किस भाव से बंधते हैं, अशुभभाव तो वहाँ होता नहीं है और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का जो शुद्धभाव प्रगट हुआ है, वह बंधन का कारण होता नहीं है, इससे व्रतादि का जो शुभभाव है, उसी से कर्म बंधते हैं, इससे वह बंध का कारण है, और रागरहित ज्ञानस्वभाव का निर्णय करके उसमें लीनता करना, वह कर्मों का काटने का-मुक्ति का कारण है। ऐसा होने पर भी वह उस राग को धर्म का या मुक्ति का कारण मानते हैं, वे अनवस्थित परिणतिवाले रहने के कारण संसारतत्त्व ही हैं। किसी की कृपा से जीव को मोक्ष प्राप्त नहीं होता और न किसी की अकृपा से वह संसार में भ्रमण करता है, मिथ्याश्रद्धा से जीव की अस्थिर परिणति को संसार कहा है।

आत्मा का वास्तविक ज्ञानमय स्वरूप है, उसका जिन्होंने निर्णय प्रगट नहीं किया, वे जीव भले ही त्यागी हों या भोगी - सब संसार में भ्रमण करनेवाले संसारतत्त्व हैं - ऐसा जानना इसप्रकार संसारतत्त्व का स्वरूप बतलाया। अब, इस संसार से विरुद्ध मोक्षतत्त्व का वर्णन 272वीं गाथा में करेंगे।●

आत्मधर्म (हिन्दी), वर्ष 7, अंक दूसरा

—: सूचना :—

तीर्थधाम मङ्गलायतन में द्वारा हुए कार्यक्रमों VCD / MP3 को आप द्वारा देख सकते हैं:—

आप Computer में Youtube पर MANGALAYATAN JAIN MANDIR सर्च करे, उसमें तीर्थधाम मङ्गलायतन पंचकल्याणक 2003; मङ्गलायतन विश्वविद्यालय पंच - कल्याणक 2010; मंगल बोधि VCD; मंगल कथा VCD; धन्य मुनिदशा VCD; मङ्गलायतन - एक आह्वान (परिचय); मुनि सुकुमाल कथा; महावीर पूजन आदि आप देख सकते हैं / DOWNLOAD कर सकते हैं।

आचार्यदेव परिचय शृंखला

भगवान आचार्यदेव
श्री काणभिक्षु

आचार्य जिनसेनजी ने आचार्य काणभिक्षु का, कथा-ग्रन्थ रचयिता के रूप में उल्लेख किया है। इससे ज्ञात होता है, कि आपका कोई प्रथमानुयोग सम्बन्धी ग्रन्थ रहा है।

आचार्य जिनसेनजी ने लिखा है—

धर्मसूत्रानुगा ह्लद्या यस्य वाङ्मणयोऽमलाः।
कथालङ्कारतां भेजुः काणभिक्षुर्जयत्यसौ॥

अर्थात् वे काणभिक्षु जयवन्त हों, जिनके धर्मरूप सूत्र में पिरोये हुए, मनोहर वचनरूप निर्मलमणि कथाशास्त्र के अलङ्कारपने को प्राप्त हुए थे अर्थात् जिनके द्वारा रचे गये कथाग्रन्थ श्रेष्ठ थे। आपने एक चारित्रग्रन्थ लिखा हो ऐसा भी मानना है।

आपका कोई कथा-ग्रन्थ वर्तमान में उपलब्ध हो—ऐसा ज्ञात नहीं होता।

ये आचार्य जिनसेनजी द्वारा उल्लिखित होने से, आप उनसे पूर्ववर्ती विद्वान थे।

वे ईसु की 8वीं शताब्दी मध्यपाद के आचार्य थे।

आचार्यदेव काणभिक्षु भगवंत को कोटि-कोटि वंदन।

❀ ❀ ❀

मुनिपुंगव वादीभसिंह

जिनाम्नाय में वादीभसिंह उपनाम धारक दो धर्मात्मा हुए हैं। (1) ओड़यदेव (ई.सन् की आठवीं-नौवीं शताब्दी) व (2) अजितसेन ई.सन् की 11वीं शताब्दी। उनमें से हिन्दी साहित्य के 'बाणकवि' के समान जैन संस्कृत-गद्य साहित्य में प्रथम वादीभसिंह का स्थान है। जबकि दूसरे वादीभसिंह तो अजितसेन वादीभसिंह दार्शनिक विद्वान थे।

आपके द्वारा रचित 'गद्यचिन्तामणि' ऐसा ग्रन्थ है, वह मानों 'कादम्बरी' की प्रतिस्पर्धा करता हो, ऐसे काव्यरस के भावों से भरपूर है।

आचार्य अकलंकदेव के गुरुभाई दिगम्बर आचार्य पुष्पसेन के आप शिष्य

थे। पुष्पसेन आपके काव्यगुरु व दीक्षागुरु थे। आपको अपने गुरु प्रताप से मुनिपुंगवता प्राप्त हुई थी।

आप कलिंग के गंजाम जिले के आस-पास के निवासी थे, ऐसा इतिहासकारों का मानना है, क्योंकि गंजाम जिला मद्रास के उत्तर में उड़ीसा में सम्मिलित है। वहाँ पर ओड़ेय और मोड़ेय दो जातियाँ निवास करती हैं। सम्भवत: आप ओड़ेय जाति के हों।

दूसरा आपने गद्यचिन्तामणि में जीवन्धरस्वामी की कथा लिखी है और गंजाम जिले में प्रचलित लोक-कथाओं में जीवन्धरचरित आज भी उपलब्ध होता है।

आप वही वादीभसिंह है, जिन्हें आचार्य जिनसेन व आचार्य वादिराज ने 'वादिसिंह' उल्लिखित किया है।

आपकी दो रचनाएँ हैं : (1) क्षत्रचूड़ामणि व (2) गद्यचिन्तामणि। 'स्याद्वाद्सिद्धि' भी आपकी रचना बताई जाती है।

आप ईस्वी की 770-860 के आचार्य थे।

मुनिपुंगव वादीभसिंह भगवंत को कोटि कोटि वंदन।

आगामी कार्यक्रम

दशलक्षण महापर्व

आगामी दशलक्षण महापर्व के पावन अवसर पर दिनांक **3 सितम्बर से 12 सितम्बर 2019** तक विशेष कार्यक्रम आयोजित किये जायेंगे। इस अवसर विधान-पूजन, पूज्य गुरुदेवश्री के सी.डी. प्रवचन एवं विद्वानों का स्वाध्याय, सांस्कृतिक कार्यक्रमों का लाभ प्राप्त होगा।

जो भी साधर्मी इस कार्यक्रम में रहकर धर्मलाभ प्राप्त करना चाहते हैं, वे सादर आमन्त्रित हैं। यहाँ पर आवास एवं भोजन की व्यवस्था है। कृपया अपने आगमन की अग्रिम सूचना अवश्य प्रदान करें।

सम्पर्कसूत्र : तीर्थधाम मङ्गलायतन, अलीगढ़-आगरा राजमार्ग,
हनुमान चौकी, सासनी-204216 (हाथरस)
मोबा. 9997996346 कार्या० (अशोक जैन); 9756633800 (सुधीर शास्त्री)

उपदेश सिद्धांत रत्नमाला

परमार्थ शक्य नहीं तो व्यवहार को ही जान

जिणधम्मं दुण्णेयं, अइसय णाणीहिं णज्जइ सम्मं।
तह वि हु समयट्ठिइए, ववहारणयेण णायव्वं ॥137॥

भावार्थ - निश्चयनय से मोहरहित आत्मा की परिणतिरूप शुद्ध जिनधर्म तो बड़े-बड़े ज्ञानी पुरुषों द्वारा जानना भी कठिन है, उसका लाभ होना तो दुर्लभ ही है परन्तु सत्यार्थ देव-शास्त्र-गुरु का श्रद्धान रूप जो व्यवहार धर्म है, उसे तो अवश्य ही जानना चाहिए। यदि व्यवहार से जिनमत की स्थिरता बनी रहेगी तो परम्परा से कभी न कभी निश्चय धर्म की प्राप्ति भी हो जाएगी और यदि व्यवहार धर्म भी नहीं रहेगा तो पाप प्रवृत्ति होने से जीव निगोदादि नीच गति में चला जाएगा जहाँ धर्म की वार्ता भी दुर्लभ है इसलिए यदि परमार्थ जानने की शक्ति न हो तो व्यवहार जानना ही भला है-ऐसा जानना ॥137॥

व्यवहार परमार्थ को साधनेवाला है

जह्मा जिणेहिं भणियं, सुय ववहार विसोहयं तस्स।
जायइ विसुद्ध बोही, जिण आणाराह गत्ताओ ॥138॥

भावार्थ - जो जिनोक्त व्यवहार है, वह निश्चय का साधक है। अत: शास्त्राभ्यास रूप व्यवहार से परमार्थरूप वीतराग धर्म की प्राप्ति होती है-ऐसा जानना ॥138॥

गुरु को परीक्षा करके ही पूजना

जे जे दीसंति गुरु, समय परिक्खाइ तेण पुज्जंति।
पुण एगं सद्दहणं, दुप्पसहो जाय जं चरणं ॥139॥

अर्थ - वर्तमान समय में संसार में जो-जो गुरु दिखाई देते हैं या गुरु कहलाते हैं, उन सबको शास्त्र के द्वारा परीक्षा करके पूजना योग्य है। जिनमें शास्त्रोक्त गुण नहीं पाये जाएँ उनको तो मूर्खों के सिवाय कोई भी नहीं पूजता। आजकल तो एक सच्ची श्रद्धा करनी ही कठिन है तो जीवन पर्यन्त चारित्र धारण

करना कठिन कैसे नहीं होगा अर्थात् होगा ही इसलिए जो सम्यक् चारित्र के धारक हैं, वे ही गुरु पूज्य हैं-ऐसा गाथा का भाव जानना ॥139 ॥

शास्त्रानुसार परीक्षा करके ही गुरु को मानना

ता एगो जुगपवरो, मज्झत्थ मणेहिं समयदिट्ठीए।
सम्मं परिक्खियव्वो, मुत्तूण पवाह-हलबोलं ॥140 ॥

भावार्थ - 'हमारे तो परम्परा से ये ही गुरु हैं, इनके गुण-दोष के विचार करने का हमें क्या काम है'—इस प्रकार का पक्षपात व हठ छोड़कर जिस प्रकार शास्त्रों में गुरु के गुण-दोष कहे गये हैं, उस प्रकार विचार करने चाहिए और लोकमूढ़ता को छोड़कर गुरु को मानना चाहिए ॥140 ॥

अज्ञानी गुरु के संग से ज्ञानी भी चलायमान

संपइ दूसम समये, णामायरिएहिं जणिय जण मोहा।
सुद्ध धम्माउ णिउणा, चलंति बहुजण-पवाहाओ ॥141 ॥

भावार्थ - परिग्रहधारी कुगुरु के निमित्त से बुद्धिमानों की भी बुद्धि चलायमान हो जाती है। अत: कुगुरुओं का निमित्त मिलाना योग्य नहीं है ॥141 ॥

मिथ्यादृष्टि व सम्यग्दृष्टि में अन्तर

जाणिज्ज मिच्छदिट्ठी, जे पडणालंबणाइं गिण्हंति।
जे पुण सम्मादिट्ठी, तेसिं मणो चडण पयडीए ॥142 ॥

भावार्थ - जिन जीवों को अणुव्रत-महाव्रतादि रूप ऊपर की दशा का त्याग करके निचली दशा रुचिकर होती है, वे मिथ्यादृष्टि ही हैं तथा सम्यक्त्वादि ऊपर का धर्म धारण करने का जिनका भाव है, वे सम्यग्दृष्टि हैं-ऐसा जानना ॥142 ॥

सुमार्गरत पुरुषों का मिलाप दुर्लभ है

सव्वं पि जए सुलहं, सुवण्ण-रयणाइं वत्थु-वित्थारं।
णिच्चं चिअ मेलावं, सुमग्ग-णिरयाण अइ-दुलहं ॥143 ॥

भावार्थ - जगत में स्वर्ण-रत्न आदि वस्तुओं का विस्तार तो सब ही सुलभ है परन्तु जो सुमार्ग में रत हैं अर्थात् जिनमार्ग में यथार्थतया प्रवर्तते हैं, उनका मिलाप निश्चय से नित्य ही अत्यन्त दुर्लभ है ॥143 ॥

साभार : उपदेश सिद्धान्त रत्नमाला

समाचार-सार

तीर्थधाम मङ्गलायतन में
पूज्य गुरुदेवश्री के उपकार दिवस पर गोष्ठी सम्पन्न

तीर्थधाम मङ्गलायतन : यहाँ संचालित भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन के छात्रों द्वारा **अक्षय तृतीया** एवं **पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के उपकार दिवस** पर गोष्ठी का आयोजन किया गया। जिसमें बालब्रह्मचारिणी कल्पनाबेन ने अध्यक्षता की। मुख्य अतिथि के रूप में डॉ. योगेश जैन, अलीगंज; पण्डित अशोक लुहाड़िया, पण्डित सचिन जैन, पण्डित सुधीर शास्त्री, डॉ. सचिन्द्र शास्त्री आदि ने अपने वक्तव्य प्रस्तुत किये।

आध्यात्मिक बाल, युवा व प्रौढ़ चेतना शिविर सानंद संपन्न

अजमेर : श्री वीतराग विज्ञान स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, पुरानी मंडी, अजमेर के तत्त्वावधान में 29वाँ ग्रीष्मकालीन आध्यात्मिक बाल, युवा व प्रौढ़ चेतना शिविर रविवार, 12 मई से रविवार, 19 मई 2019 के मध्य श्री ऋषभायतन अध्यात्मधाम, वैशाली नगर, अजमेर में प्रातः एवं सीमन्धर जिनालय, पुरानी मंडी, अजमेर में सायंकाल संपन्न हुआ।

वैराग्य समाचार

जयपुर : श्रीमती सूरजदेवी सेठी धर्मपत्नी स्व. श्री जमनालालजी सेठी 92 वर्ष की आयु में शांतपरिणामोंपूर्वक देहावसान हो गया। आप श्री कैलाशचन्दजी, प्रकाशचंदजी सेठी की माताजी एवं टोडरमल महाविद्यालय के स्नातक संजय सेठी, जयपुर की दादी थीं।

खनियांधाना : श्रीमती प्रभादेवी जैन धर्मपत्नी श्री सुरेशचंदजी जैन साव (माताश्री संजय शास्त्री, राजीव, अभिषेक) का समता व वैराग्यभाव सहित देहावसान हे गया। ज्ञातव्य है कि आप पंडित राकेशजी शास्त्री दिल्ली व अचलजी शास्त्री खनियांधाना की चाचीजी थीं।

बांसवाड़ा : श्री जयंतीलालजी भरडा का शांतपरिणामोंपूर्वक देहावसान हो गया। आप पण्डित रितेश शास्त्री, डडूका के पिताजी थे।

फिरोजाबाद : श्री अरुणकुमार जैन (पोद्दार) का दुर्घटनावश आकस्मिक देहावसान हो गया है। आप पण्डित नवीन शास्त्री (पोद्दार) जयपुर के पिताजी थे।

दिवंगत आत्मा शीघ्र ही मोक्षमार्ग प्रशस्त कर अभ्युदय को प्राप्त हों – ऐसी भावना मङ्गलायतन परिवार व्यक्त करता है।

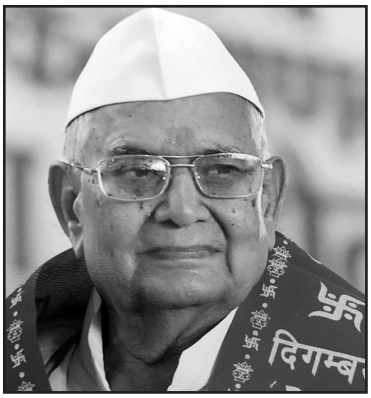

गजपंथा-नासिक : सम्माननीय मनीषी एवं समर्पित समाजसेवी, पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी को समर्पित अनुयायी धर्मानुरागी श्रीमान् **ब्रह्मचारी धन्यकुमारजी बेलोकर** ने कई दिनों की अनवरत सल्लेखना-साधना यथायोग्य रीति से शान्त-परिणामों से दिनांक 10 मई 2019 को प्रातः 8.15 बजे इस नश्वर नरदेह का परिवर्तन कर लिया। आप अन्तिम क्षणों में श्रीमद् राजचन्द्रजी के द्वारा रचित 'अपूर्व अवसर' का पाठ सबहुमान सुनते हुए विरक्ति भाव से ओतप्रोत थे। उनका सम्पूर्ण जीवन तो आदर्श रहा ही, उनका मरण भी जिनाम्नाय वर्णित साधना पद्धति के अनुरूप अनुकरणीय रहा। यद्यपि मुमुक्षु-जगत के लिये यह एक अपूरणीय क्षति है, उनके साहसी, दूरदर्शी एवं कर्मठ नेतृत्व-क्षमता की कमी सदैव अनुभूत की जाती रहेगी। उन्होंने सम्पूर्ण जीवन पवित्र बनाये रखा एवं जिनधर्म व जिनशासन को अपनी जीवन पूँजी बनाते हुए जन-जन में उसकी प्रभावना के लिये अपना जीवन समर्पित कर दिया।

दिवंगत आत्मा शीघ्र ही मोक्षमार्ग प्रशस्त कर अभ्युदय को प्राप्त हों – ऐसी भावना मङ्गलायतन परिवार व्यक्त करता है।

सप्त तत्त्व-नव पदार्थ को समझाते हैं।

यहाँ शिष्य अपनी शङ्का व्यक्त करता है कि क्या सभी द्रव्य सर्वथा परिणामी हैं अथवा अपरिणामी हैं ? यदि सर्वथा परिणामी ही हों तो संयोगरूप एक ही पदार्थ सिद्ध हो तथा यदि एकान्त से अपरिणामी हों तो जीव और अजीव द्रव्यरूप दो ही पदार्थ सिद्ध हों, आस्रवादि नहीं; फिर आस्रवादिक सात पदार्थ कैसे सिद्ध होते हैं ?

इसका समाधान यह है कि जीव-अजीव पदार्थ कथञ्चित् परिणामी होने के कारण सात पदार्थ सिद्ध होते हैं। कथञ्चित् परिणामीपने का क्या अर्थ है — ऐसा पूछने पर समझाते हैं — जिस प्रकार स्फटिकमणि स्वभाव से निर्मल है तो भी जवापुष्पादि उपाधि से उत्पन्न पर्यायान्तर लाल, पीली आदि परिणति को ग्रहण करता है। यद्यपि स्फटिकमणि उपाधि को ग्रहण करता है, फिर भी निश्चयनय की दृष्टि से देखा जाये तो वह अपने शुद्धस्वभाव को नहीं छोड़ता; उसी प्रकार जीव भी द्रव्यार्थिकनय से सहज-शुद्ध चिदानन्द एकस्वभावी है, ज्ञान और आनन्द का अखण्ड पिण्ड है, तो भी अनादि कर्मबन्ध पर्याय के वश रागादिरूप परद्रव्य के लक्ष्य से उत्पन्न उपाधिपर्याय को ग्रहण करता है। यद्यपि जीव परपर्यायरूप से परिणमित होता है तो भी निश्चय से अपने शुद्धस्वरूप को नहीं छोड़ता है। स्वयं ध्रुव रहकर बन्धादि पर्यायरूप परिणमित होता है तथा इसी प्रकार पुद्गल भी स्वयं ध्रुव रहकर अन्य के निमित्त से स्वयं पर्यायरूप परिणमित होता है —इस प्रकार परस्पर सापेक्षपना 'कथञ्चित् परिणामी' शब्द का अर्थ है।

इस रीति से द्रव्य के कथञ्चित् परिणामीपना सिद्ध हो जाने से जीव और पुद्गल संयोगरूप परिणति से रचित होने के कारण अर्थात् जीव और पुद्गल के संयोगी परिणामों से बने हुए आस्रवादि सात पदार्थ सिद्ध होते हैं और वे ही सातों पदार्थ पूर्व कहे हुए जीव और अजीवद्रव्य के साथ मिलकर नव पदार्थ होते हैं। अत: नौ पदार्थ कहने में आते हैं।

प्रकाशन तिथि - 14 जून 2019 पोस्ट प्रेषण तिथि - 16-18 जून 2019
Regn. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2018-20

इन्द्रों और चक्रवर्तियों से भी पूज्य मुनिदशा

अहो! मुनिदशा तो धन्य है, पूज्य है; इन्द्र और चक्रवर्ती भी उसका आदर करते हैं। सम्यग्दर्शनसहित स्वरूप में लीन होकर जिसने मुनिदशा प्रगट की है, वह तो धन्य है; वहाँ विकल्प की अत्यन्त ही मन्दता है। जहाँ देह के प्रति ममता छूट गयी है, वहाँ देह पर वस्त्र धारण करने की वृत्ति ही उत्पन्न नहीं होती है। यदि वस्त्र ग्रहण की वृत्ति उत्पन्न हो तो मुनिदशा नहीं हो सकती और यदि वहाँ मुनिदशा माने तो समकित भी नहीं होता। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को मोक्षमार्ग कहा, उसमें इनसे विपरीत मिथ्यात्व का अभाव, राग का अभाव और राग के निमित्तभूत वस्त्रादि का अभाव होता है।

- पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

पं. सं. : DELBIL/2001/4685
स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक पवन जैन द्वारा **मङ्गलायतन** मुद्रणालय, आगरा रोड, अलीगढ़-202001 छपवाकर, 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित। सम्पादक : डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन।

मङ्गलायतन
श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, हरिनगर, आगरारोड, अलीगढ़-202001 (उ.प्र.)
Shri Adinath-Kundkund-Kahan Digamber Jain Trust
Harinagar, Agra Road, Aligarh-202001 (U.P.)
Ph. : 9997996346, 2410010/10; Fax : 2410019/22
info@mangalayatan.com www.mangalayatan.com